महानता की ओर

प्रभात
प्रकाशन,
दिल्ली

आचार्य चतुरसे

प्रकाशक प्रभात प्रकाशन, २०५, चावड़ी बाजार, दिल्ली-६
संस्करण १९८० / मूल्य बीस रुपये / मुद्रक रूपक प्रिंटर्स,
दिल्ली-३२

MAHANATA KI ORE *by* Acharya Chatursen Rs 20.00

यह पुस्तक सुप्रसिद्ध साहित्यकार आचाय चतुरसेन के रचनात्मक और प्रेरणात्मक निबन्धो का सकलन है। इनमे मनुष्य की समस्याओ का आज के सदभ मे देखा गया है और उसी सदभ के परिप्रेक्ष्य मे उनके समाधान की ओर सकेत किया गया है। जो आचरण करता हो, उसे ही कुछ कहने का भी अधिकार होना चाहिए। इस बात को मानकर चलें तो आचाय चतुरसेन का जीवन खुद अपने-आपमे प्रेरणा था। साहित्य की सभी विधाओ पर उन्होंने हजारो पृष्ठ लिखे। उनके परिचित जानते हैं कि उन्होने स्वय अठारह और बीस घटे औसत प्रतिदिन परिश्रम करके इतने विपुल साहित्य का निर्माण किया था। इस दृष्टि से इस पुस्तक मे जो कुछ उन्हाने कहा है वह अधिकारपूवक कहा है। यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि उनके चिंतन, उनकी प्रेरणा और उनके कथन मे एक बल है जो पाठको को परोक्ष और अपरोक्ष रूप से प्रभावित करेगा।

—प्रकाशक

क्रम

खतरे मे कूद पडो	९
तुम सिर्फ मनुष्य हो	१५
सरल, ठोस और शक्तिशाली जीवन बनाओ	३१
सघष करो	३९
गुट गढो	४५
अपना स्वामी आप बनो	५२
सत्य धम को अपनाओ	७०
धनी बनो	८२
काम मे लगे रहो	८८
अनुशासन मे रहो	९६
ब्रह्मचय और तप	१०१
बाकी रही अब डोरी	१०४
हम और वह	१११
नीच और ऊच	११८
भाग्य	१२५
क्राति	१२९
आत्मबोध	१३९
मृत्यु धम	१४६
न्याय	१५३

खतरे मे कूद पडो

खतरे मे कूद पडो। याद रखो कि ठीक खतरे का जो स्थान है, वही पर सफलता का भेद छिपा है। जीवन मे वे ही असफल हैं जो खतरे से भय खाते हैं, खतरे से बचकर चलते है। खतरे के ऊपर आक्रमण करना और उसपर अधिकार करना जीवन की बडी से बडी सफलता का रहस्य है। कल्पना करो कि तुम्हारे घर मे बिजली की फिटिंग हो रही है। कही पर उसमे कुछ विकार आया, रोशनी गुल, पखे बन्द। बिजली का कारीगर आता है और उससे कहा जाता है, देखो कही नुक्स है। बत्ती नही जलती, पखे नही चलते। बिजली की फिटिंग ठीक-ठाक है फिर भी करेंट नही आ रहा है। वह कारीगर तमाम मकान मे फैले हुए तारो की तरफ कोई ध्यान नही देता। वह सीधे उस प्वाइण्ट तक जाता है जहा खतरे का साइनबोड लगा हुआ है, और चेतावनी दी हुई है कि दूर रहो, छूना मना है। वह उसीके निकट आता है, उसे छूता है, उसे देखता-भालता है और नुक्स को पा लेता है, और उसे दुरुस्त कर देता है। बिजली का करेंट फिर जारी होता है, घर जगमगा उठता है, पखे चलने लगते हैं।

जो मनुष्य कायर होता है, वह फूक-फूककर जीवन मे कदम रखना चाहता है। वह हमेशा ऐसा रास्ता निकालता है जो खतरे से बेदाग हो, जहा किसी किस्म की जोखिम न हो। ऐसे लोग जीवन मे मनसूबे ही बाधते हुए कीडे-मकोडो की तरह रेंगते

रहते हैं। वे साहसहीन पुरुष हैं। उद्ग्रीव नही हैं। उनका जीवन निस्तेज, आशाहीन और एक ऐसे जन्मकैदी की भाति है जो कि केवल इसलिए जीता और खाता है कि वह अपनी उम्र-भर की कैद को काटे। परन्तु क्या जीवन एक कैद ही है? क्या जीवित मनुष्य को अपने जीवन मे चुपचाप एक कैदी की भाति पडे रहना चाहिए, और किसी तरह अपने जीवन के दिन काटने चाहिए? वह आफिस जाए या दुकान पर जाए, नियमित काम करे और शाम को घर लौट आए, खाए और सो रहे और दूसरे दिन भी फिर यही सिलसिला। महीनो, सालो बचपन से जवानी और जवानी से बुढापा इसी प्रकार के कार्यक्रम मे बीत जाए। क्या यही जीवन का उद्देश्य है?

यदि मनुष्य इसी प्रकार जीने लगे तो मानवीय जीवन के इतिहास का निर्माण नही हो सकता। ससार मे क्राति नही हो सकती, मानवता का विकास नही हो सकता। मानवता के विकास को प्राप्त करने के लिए जीवन मे साहस पैदा करना चाहिए। साहस ही खतरे मे कूद पडने का हौसला पैदा करता है। यह सम्भव है कि खतरे से हानि हो जाए, लेकिन ऐसा सबके लिए नही है, खतरे से हानि उन्हीको होती है जो अनाडी और असावधान हैं। अनाडी और असावधान यदि बिजली के प्वाइण्ट को छूएगा तो वह धक्का खाएगा और मर जाएगा। लेकिन सावधान और जानकार आदमी जल्दी खतरे मे धोखा नही खाएगा। खतरा तो एक काल्पनिक वस्तु है। वह सिद्धि और सफलता के भेद का दूसरा नाम है।

भीष्म पितामह से जब मृत्यु के अतिम क्षण पर महाज्ञानी युधिष्ठिर ने यह प्रश्न किया कि महाराज, अब मुझे कोई ऐसा

उपदेश दीजिए कि जिसमे सफलता का बडा भारी भेद भरा हुआ हो, तब उन्होंने बतलाया—"नात्मानमवमन्येत् पूर्वाभिर-समृद्धिभि । आमृत्यो श्रियमन्विच्छेत नैना मन्येत् सुदुलभाम् ।" अर्थात् "पहली असफलताओ से अपने-आपको अपमानित न अनुभव करो, और सिद्धि को कभी दुर्लभ और अपने से दूर न समझो, मृत्यु तक उसको ढूढो और प्राप्त करो ।" यही जीवन का सबसे बडा भेद है ! मृत्यु एक परिवतन हैं, मृत्यु से जीवन की समाप्ति नही होती । मृत्यु जीवन को नवीनता देती है । इसलिए यह मानकर कि खतरे का बडे से बडा और बुरे से बुरा परिणाम मृत्यु हो सकती है—उस मृत्यु से मनुष्य को निर्भय रहना चाहिए। जो कोई मृत्यु से निर्भय हो जाएगा, उसे महान बल प्राप्त होगा ।

चू कि मृत्यु एक परिवर्तन है, इसलिए मृत्यु का एक त्योहार मनाओ । मृत्यु से भयभीत न होओ । जो आदमी मरते वक्त रोता और कलपता है, मृत्यु उसको भी छोडती नही है । जो आदमी हसते और बातें करते हुए प्राण त्यागते हैं, मरते वे भी हैं । फिर यह रोना और कलपना क्यो ? भारत मे दुर्दशा और बदनसीबी के कारण प्रति वष डेढ करोड आदमी रोगो मे और लगभग इतने ही आदमी अकाल और दूसरे कारणो से चारपाई पर तडप-तडपकर, घुल घुलकर मर जाते हैं । मृत्यु से पहले और मृत्यु तक भी वे खुद रोते हैं, और उनके परिवार वाले भी रोते ही हैं । किसी किसी परिवार मे तो यह रुदन निरन्तर जीवन-भर चलता रहता है । प्रतिवर्ष कोई न कोई मरता है और एक आदमी के मरने का शोक वर्ष-भर तक मनाया जाता है । कहा यह रोग और शोक से भरी हुई भावना और कहा मृत्यु मे खेल करने का जुनून । इन दोनो बातो मे जमीन-आसमान का अन्तर

है। मनुष्य तो रक्तवीज है। जहा मनुष्य का रक्त गिरेगा वही अनगिनत मनुष्य उत्पन्न होगे, हमेशा मे होते रहे है।

ससार के विप्लव का इतिहास देखो, बडे बडे कत्लेआम हुए, लेकिन कही प्रजा का नाश हुआ ? इस सबके बाद प्रजा तो फिर हरी-भरी हो जाती है। जिन जातियो के उत्सग के कारनामे इतिहास मे लिखे हुए है, उन जातियो ने अपने उत्सग का पूरा-पूरा मूल्य प्राप्त किया है। फिर क्यो उत्सग से डरा जाए ? क्यो अपने जीवन को कायर बनाया जाए ? हमे निश्चय करना चाहिए कि हम जीएगे और मरेंगे, लेकिन शान के साथ। हमे चाहिए कि हम अपने जीवन को सुदर बनाने की अभिलाषा करे।

हम सोचते है कि अपने जीवन मे हम मोटर खरीदें, महल बनाए, बढिया कोठियो मे रहे, बढिया भोजन करें, बढिया कपडे पहनें, सैकडो अन्य सुविधाए जुटाए, हमारे अर्दली हमारे हुकुम मे रहे, हमारा जीवन ऐसा सुखी और सुन्दर हो कि लोग देखकर बोल उठें कि फला आदमी किस तरह जी रहा है। लेकिन जो व्यक्ति बहुत ऊची भावना रखते हैं वे जीवन मे इन ऐश्वर्यो की परवाह नही करते। वे अपनी मृत्यु को सुदर बनाने की चेप्टा करते हैं। वे चाहते हैं कि उनकी ऐसी मृत्यु हो कि लोग आख उठाकर देखें और कहे कि फला आदमी की मृत्यु इस प्रकार से हुई। दुनिया मे बहुत-से छोटे-मोटे जीव हैं, कीडे-मकोडे हैं। जब आप रास्ते मे चलते हैं तो इनमे से सैकडो आपके पैरो से कुचलकर मर जाते हैं। यदि मनुष्य भी इसी प्रकार कुचलकर मर जाए, तब फिर इन कीडे मकोडो और मनुष्यो में क्या अन्तर रह गया ?

फ्रास मे जो विप्लव हुआ, भारत मे जो विप्लव हुआ, इनमे अनगिनत प्राणियो की आहुति वर्षों तक दी गई। उनमे से एक-एक की कथा मनन करने के योग्य है। मृत्यु का इतना साहसपूर्ण मुकाबला करना इतिहास मे बहुत कम देखा गया है। अन्य जातियो ने भी जब मृत्यु का मुकाबला हसकर और विनोद से किया तो उसका कुछ और ही परिणाम हुआ। कुछ दिन पूर्व एक दुर्घटना हुई थी। एक जहाज कुछ भारतीयो को लेकर कही जा रहा था। वह अचानक एक चट्टान से टकराया और डूबने लगा। उस डूबते हुए जहाज पर कोहराम मच गया। बचकर भाग निकलने के लिए एक-दूसरे मे जो कटाकटी मची, जैसी हाय-हाय और चीत्कार मची, वह हृदय को विदीर्ण कर देने वाली थी और यह सब कुछ भीरुता का लक्षण था। इसके विरुद्ध महायुद्ध मे कुछ जहाज डुबाए गए, जर्मनो के और अग्रेजो के भी। दोनो ही जातियो के महावीरो ने मृत्यु के समय अपनी स्थिरता और दृढता प्रकट की। एक अग्रेजी जहाज का कप्तान शत्रु के कुछ कैदियो को ले जा रहा था। जब शत्रु ने उसके जहाज पर टारपीडो मारा और जहाज आनन-फानन मे डूबने लगा तो एक कप्तान की हैसियत से उसने सोचा कि मेरा कर्तव्य है कि जिन कैदियो की सुरक्षा का भार मेरे ऊपर है—अपने प्राण रहते मैं उनकी जान को खतरे मे नही पडने दूगा। उसने जहाज की तमाम लाइफ बेल्ट कैदियो को दे दी। अब सिर्फ एक ही लाइफ बेल्ट बची थी और दो आदमी थे, एक स्वय कप्तान और दूसरा एक जर्मन कैदी। उसने चुपचाप निर्णय किया और वह बेल्ट उसने उस जर्मन कैदी को अर्पित कर दी और स्वय जहाज के मस्तूल को पकडकर खडा हो गया और कुछ

मिनटों के बाद वह अनन्त समुद्र के महान गर्भ में विलीन हो गया। यह है जीवित पुरुषों के जीवन का इतिहास, मृत्यु को आलिंगन करने और प्रेम करने का इतिहास, मृत्यु सुन्दरी को वरण करने का इतिहास, इसे कहते हैं मृत्यु का उत्सव मनाना। जिसने मृत्यु का वरण कर लिया वह निर्भय हो गया। वह खतरे से पार हो गया। इसलिए जीवन का सबसे बड़ा गुण यही बनाओ कि खतरे में कूद पड़ो। खतरे से भयभीत न हो। खतरे से खेल करने की आदत डालो, बस, फिर तुम जीवन में असाधारण काम करोगे।

तुम सिर्फ मनुष्य हो

मनुष्य की कोई जाति, धम, देश और राष्ट्र नही है। वह केवल मनुष्य है। मनुष्यता के नाते सारे ससार मे विश्व व्याप्त भ्रातृसघ की स्थापना करना मनुष्य का सबसे बडा कत्तव्य है। अपने दिमाग मे मजबूती से यह विचार पैदा कर लो कि सारी दुनिया के मनुष्य तुम्हारे भाई हैं और सारी दुनिया तुम्हारा घर है। देश, राष्ट्र, जाति और धम ये जब तक कायम रहेगे तब तक मनुष्य एक-दूसरे से लडते रहेगे। तुम यह कहते रहो कि हिंदुस्तान हमारा देश है। हिंद हमारा राष्ट्र है। अग्रेज यह कहते रहे कि इगलेड उनका देश है, जर्मन यह कहते रहे कि जमनी उनका देश है। इस तरह से, इस भाति सारी दुनिया के लोगो मे जब तक अपने देश और राष्ट्र की भिन्नता की दीवार कायम रहेगी तब तक वे एक-दूसरे से लडेंगे। मनुष्य की लडाई की समाप्ति तभी हो सकती है जबकि उनके हृदयो से परस्पर की भिन्नता की भावनाए दूर हो जाए। सारी दुनिया मे मनुष्य रहते हैं। अब से कुछ पहले जब विज्ञान का पूरा विकास नही हुआ था, तो मनुष्य एक-दूसरे से बहुत दूर था। दस-बीस कोस चलना भी इस लोक से उस लोक की यात्रा के समान कठिन था। विज्ञान के नये यातायात-सबधी आविष्कारो से पहले जब लोग तीथयात्राओ को निकलते थे तब गले मिलकर रोया करते थे और इसका यह मतलब होता था कि अबके बिछुडने पर फिर मिलना दुर्लभ है। वर्षों यात्राओ मे गुजर जाते थे और बडी-

बडी कठिनाइयो और खतरो का उन्हे सामना करना पडता था। जो कोई यात्रा से लौट आता था वह अपना पुनर्जन्म समझता था। लेकिन विज्ञान ने यात्राओ के साधनो को सुगम कर दिया और अब मनुष्य न केवल आस-पास के देश विदेशो की यात्रा कर सकते है, प्रत्युत वे सारे विश्व मे—अखण्ड भू-मण्डल मे बडे ही आराम और नि शक हृदय से यात्रा कर सकते हैं। विज्ञान ने मनुष्य की शक्तियो का विकास किया है। विज्ञान ने मनुष्य को उन्नत किया है। आज विज्ञान के प्रताप मे तुम्हारे कानो की शक्ति इतनी बढ गई है कि रेडियो के द्वारा अपने घर बैठे हुए सारे विश्व की आवाज अपने कानो से तुम सुन सकते हो। जमनी और रूस के किसी किनारे पर कोई व्यक्ति बैठा हुआ एक बात कहता है, तुम अपने घर मे बैठे हुए अपने कानो से उसके शब्दो को सुन सकते हो। इतना ही नही, विज्ञान ने आखो को भी ऐसी शक्ति सुलभ कर दी कि तुम अपने घर बैठे हुए दुनिया के उस किनारे पर बात करनेवाले आदमी को ठीक उसी प्रकार देख सकते हो जैसे कि उसकी बातो को सुन लेते हो। अब विज्ञान तुम्हारी नासिका की शक्ति बढाएगा और लन्दन मे एक आदमी माइक्रोफोन के सामने सेंट से भरा हुआ एक रूमाल हिलाएगा और उसकी सुगध तुम भारत मे बैठे हुए अपनी नासिका से ग्रहण कर सकोगे। इसके बाद तुम्हारी रसना-शक्ति बढेगी, फ्रास मे माइक्रोफोन के पास बैठकर एक व्यक्ति एक फल खाएगा और उसका स्वाद तुम्हे हजारो मील दूर बैठे हुए अपने घर पर प्राप्त हो जाएगा। शक्ति का विकास और भी बढ़ेगा और फिर तुम्हारी स्पर्शेन्द्रिय विश्वव्यापिनी हो जाएगी और तुम दुनिया के दूसरे किनारे पर बैठे हुए मनुष्य को छू

सकोगे, आलिंगन कर सकोगे। इस भाति तुम्हारा यह क्षुद्र देह विश्व मे व्याप्त हो जाएगा और इस देह मे कैद हुई तुम्हारी आत्मा उसी प्रकार सारे ससार को पदाक्रान्त करेगी जैसा कि लोग सुनते थे कि किसी जमाने मे योगीगण योगक्रियाओ के द्वारा तमाम विश्व को आक्रान्त करते थे।

जब विज्ञान ने तुम्हे इतनी शक्ति प्रदान की है और सारे मनुष्य एक-दूसरे से इतने परिचित हो गए हैं, व्यापार और व्यवहार, व्यवसाय और दूसरे स्वार्थ जब एक-दूसरे से मिल गए हैं, तब हरेक आदमी का अलग देश, अलग राष्ट्र, अलग जाति और अलग धर्म हो, इसकी कोई जरूरत नही है। पुराने जमाने मे धर्म के नाम पर बडी-बडी कीमती आत्माओ का बलिदान किया गया है। आज वे अपनी इस मूर्खता को समझ गए है। सुकरात को जिन्होने जहर का प्याला पिलाया, ईसा मसीह को जिन्होने सूली पर चढाया और अन्य दूसरे सतो को जिन्होने कष्ट देकर मारा—रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट सम्प्रदायो के खूनी उपद्रव, मुसलमानो की उन्मादी तलवार के रक्त-भरे कारनामे, बौद्ध और हिन्दुओ के धार्मिक जुनूनो से भरे हुए द्वेषपूर्ण हमले, मुसलमानो और सिक्खो की तथा मुसलमानो और हिन्दुओ की रक्तपात और अशान्ति की घटनाए—यह सब सभ्य ससार मे एक मूर्खतापूर्ण अमानवीय दुस्वप्न की भाति मानी जानेवाली बात है। हम उन लोगो की प्रशसा करते हैं, जिन्होने देश प्रेम और राष्ट्रीयता के नाम पर अपने खून की नदिया बहा दी, आज हमारे हृदय मे उन लोगो का भी मान है जो देशभक्ति के नाम पर जूझ मरे है। लेकिन अब समय आ गया है कि मनुष्य की विचारधारा ऊची उठे और उसका आधार मानवीयता का

एकीकरण हो और वह समझे कि मनुष्यता का भेदभाव मूर्खता है। न कोई किसीका देश है, न कोई किसीका धर्म, न कोई किसीकी जाति है, न कोई किसीका राष्ट्र। सारे संसार के मनुष्यों का एक ही धर्म, एक ही जाति, एक ही राष्ट्र और एक ही समाज है। वे सब आपस में भाई हैं। उनका आपस में लड़ना मनुष्यता का कलंक है। उनमें परस्पर प्रेम होना चाहिए, परस्पर विश्वास और एकता होनी चाहिए, सहानुभूति होनी चाहिए, एक-दूसरे के लिए उनके हृदय में स्थान होना चाहिए।

यह कितने आश्चर्य की बात है कि एक मनुष्य, जब कि शान्त वातावरण होता है, सारी दुनिया में यात्रा करता है और सर्वत्र मित्र की भांति उसका सत्कार होता है। सारी दुनिया के दरवाजे उसके लिए खुले रहते हैं। वह जहां जाता है, सब जगह कुटुम्बवत्, भाई के समान, मित्र के समान उसका आदर-सत्कार किया जाता है। वह सारी दुनिया में लाखों-करोड़ों रुपयों का व्यापार करता है, प्रेम का व्यवहार करता है और पाता है। लेकिन जब मनुष्य पर जातीय अभिमान और राष्ट्रीय जुनून चढ़ता है तो अकारण ही एक-दूसरे को वे शत्रु समझते हैं, एक दूसरे के लिए हथियार उठाते हैं, एक-दूसरे के खून के प्यासे हो जाते हैं। मैं यह कहना चाहता हूं कि किसी भी कीमत पर मनुष्य का मनुष्य के लिए खून बहाना मनुष्य के लिए कलंक की बात है, यह एक भयानक पातक है। किसी भी कीमत पर मनुष्य का खून बहाने की प्रवृत्ति मनुष्य में से नष्ट हो जानी चाहिए। मैं यह भी कहता हूं कि जिसे वीरता और बहादुरी कहा जाता है और मनुष्य के आदियुग से जिसकी बड़ी भारी प्रशंसा की गई है, अगर वह सामूहिक शांति सुख समृद्धि की हानि और कुछ

मनुष्यो के लिए कुछ मनुष्यो के जीवन के मूल्य पर टिकी है तो उसका जितनी जल्दी नाश हो जाए अच्छा है। वीरता और बहादुरी के ये काले कारनामे, जो शताब्दियो के खूनो और हत्याओ से भरे हुए है, मानवता का पूण उदय नही होने देते।

मनुष्यता का उदय तो ससार मे तब होगा, जब विवेक और प्रेम एकीभूत होकर मनुष्य की सारी शक्तियो को मनुष्य की सेवा और सहायता के लिए नियोजित करेगे। जगली जानवरो मे, जगली जातियो मे और सभ्य मनुष्यो मे क्या अतर हो सकता है? आज कोई भी जगली जानवर किसी भी आदमी अथवा दूसरे पशु को देखकर उसपर आक्रमण करता है। लगभग ऐसी ही स्थिति जगली जाति के मनुष्यो की भी है। अगर सभ्यता का विकास होने तथा विज्ञान के प्रकटीकरण के बाद भी मानव-जीवन ऐसा ही रहे तो यह तो उसके लिए बडे भारी कलक की चीज है। फिर विज्ञान और विकास का लाभ ही क्या हुआ?

आज विज्ञान ने जहा अनेक वरदान दिए है वही मनुष्य को सबसे अधिक सहारक और भयानक बना दिया है। विज्ञान का जो उत्पादन ससार को सुदर करने के लिए, जीवन को मनोरम और मोहक करने के लिए अपूव साधन था, उसने मनुष्य का विध्वस किया है। विज्ञान के सहारे सभ्य कहलाने का दभ करनेवाली जातिया विश्व मे विध्वस कर रही है। आज वे वैज्ञानिक सत्ता के बल पर अपने देश के स्वाथ के लिए दूसरी कमजोर जातियो का रक्त बहाती है। कल यह दिन आएगा जब कि दूसरी जाति के मनुष्य उनसे अधिक वैज्ञानिक विकास करके प्रतिहिंसा की भावना से उनके बच्चो के खून की नदिया बहाएगे।

मैं यह कहता हू कि क्रमागत शत्रुतावश खून की नदिया बहाने की इस परम्परा का नाश हो जाए। सारे विश्व के जीवो को अभय मिले। विश्व मे कोई मनुष्य निरीह और निराश्रय न रहे। सारा ही विश्व मनुष्य-मात्र का घर बने और उसके लिए विश्व आनन्द का केन्द्र बन जाए। यही मनुष्य के सच्चे विकास का स्वरूप है।

हिटलर ने जो महान सहार प्रारम्भ किया था वह कदाचित् पिछले तमाम मानवीय नर-सहारो से बढ-चढकर था। परन्तु जिस भावना ने हिटलर को यह कुकर्म और हत्याकाण्ड करने के लिए विवश किया, वह नवीन नही थी। उसके हथियार, उसके हवाई जहाज, उसके टैंक, उसके पराशूट और उसके तमाम यान्त्रिक साधन, ये सब कुछ नवीन हो सकते थे, परन्तु उसकी स्वार्थ-साधना, उसकी अपने राष्ट्र और अपने देश तथा अपनी सस्कृति की उन्नति की भावना पुरानी चीज थी। और यह बहुत तुच्छ थी। इसकी तुच्छता इसीसे प्रमाणित थी कि उसमे सहिष्णुता, उदारता, त्याग और विकास क्रम नही था। वास्तव मे यह पाशविक प्रवृत्ति थी। पशु जीवन और पाशविक प्रवृत्ति का स्वरूप ही यह है कि बलपूर्वक दूसरो को अपने अनुशासन मे रखा जाए। लेकिन निश्चय ही मनुष्य मनुष्य की अधीनता मे नही रहेगा। जब वह मनुष्यता के सच्चे विकास को प्राप्त करेगा, अधीनता के बोझ को उतारकर फेंक देगा। पराधीनता का बोझ पाशविकता का लक्षण है, मानवता का नही। मानवता का धरातल तो सहकार और स्वाधीनता का धरातल है।

एक मनुष्य चाहे जितना कमजोर हो और दूसरा चाहे जितना बलवान, एक मनुष्य चाहे जितना धनवान हो और दूसरा

चाहे जितना गरीब, एक मनुष्य चाहे जितना विद्वान हो और दूसरा चाहे जितना मूर्ख वे सब बराबर हैं। विद्वान कभी मूर्ख का अधिपति नही बन सकता, और धनवान कभी गरीब का अधिपति नही बन सकता। इसी प्रकार बलवान कभी निर्बल का अधिपति नही बन सकता क्योकि वे सबके सब मनुष्य है। उनकी मानवीय सृष्टि उन सबको बराबर होने का अधिकार देती है। आज यदि धनी, बलवान और विद्वान दरिद्र, निर्बल और मूर्ख के मालिक बने हुए है तो यह राष्ट्रीयता के कारण है जिसकी जड़ें हिंसा, खून-खराबी, युद्ध और विनाश हैं। युद्ध और विनाश से आज मनुष्य की आत्मा ऊब उठी है। वह यह समझ गया है कि मनुष्य से मनुष्य का लड़ना मनुष्य का चरम ध्येय नहीं। मनुष्य का चरम ध्येय तो मनुष्य का मनुष्य के लिए सेवक और प्रेमी बनना है। ससार के नवयुवको के हृदयों में एक स्वस्थ उमंग और उत्साहपूर्ण रहता है। उनकी आत्माएँ पवित्र होती हैं, उनको ससार का अनुभव नहीं होता, इसलिए उनको आसानी से उत्तेजित किया जा सकता है। ऐसे भावुक नवयुवकों को अवसरवादी राजनीतिज्ञ अपने स्वार्थसिद्धि करने के कारण उत्तेजित करके, उन्हें मिथ्या [illegible] देशप्रेम [illegible], [illegible] मध्य से दिव्य ज्ञान, आनन्द और प्रेम के स्थान में हथियार उनके हाथ की पुस्तकें और लेखनी के [illegible] बन्दूकें और मशीनगनें देते हैं और जिन मनुष्यों को उन्हें प्रेम करना चाहिए, जिन मनुष्यों का उन्हें विकास करना चाहिए [illegible] मनुष्यों का उन्हें आदर करना चाहिए—उन्हीं मनुष्यों के [illegible] डालने को उनको प्रेरित किया जाता है। उनके [illegible] दिए जाते हैं। निस्सन्देह यह उनकी अनुभव [illegible]

लाभ उठाना है।

ससार के नवयुवको का बहुत शीघ्र एक ऐसा सगठन बनना चाहिए जो कि किसी भी मूल्य पर मनुष्य से लडने को तैयार न हो। किसी भी मनुष्य से लडाई जारी करना, उसे शत्रु समझना मनुष्यता के लक्षण से बाहर की चीज है। धीर बुद्धि और कलात्मक भावना का सामजस्य विज्ञान के सदुपयोग के रास्ते पर बढने की शुरुआत है। तुम विज्ञान, कला और विवेक इन तीनो को मिलाकर मानवता की सास्कृतिक रूपरेखा बनाओ और युद्ध से रहित तथा व्यक्तिगत स्वार्थों से रहित मनुष्यो के सिरमौर बनो।

में तुम्हे उदाहरण देकर यह बात समझाता हू। तुमने नवीन शिक्षा प्राप्त की है, कालेज की उच्च डिग्रिया प्राप्त की है, तुम प्रोफेसर, वकील या जज हो। तुम्हारा बडा मान और सम्मान है। तुम्हारे घर मे तुम्हारे पिता हैं, वह बिलकुल पुराने ढग के वेपढे आदमी है। पुराने तरीके के कपडे पहनकर सीधे सादे ढग से रहते हैं। तुम्हारी माता हैं, जिन्होने आधुनिक शिक्षा नही प्राप्त की। जो प्राचीन रूढियो के अन्दर पली हैं और प्राचीन रूढियो की गुलाम हैं। तुम्हारे छोटे भाई है जो तुमसे भी ज्यादा विद्वान हैं, सभ्यता सस्कृति मे पैठ रखने वाले हैं। तुम्हारे घर मे नौकरानी है जो कि बचपन से वही पली है और जिसने तुम्हे गोद मे खिलाया और आज भी वह तुम्हारे घर के सब छोटे और गन्दे काम करती है। इसी प्रकार तुम्हारे घर मे नौकर है जिसने तुम्हारे परिवार की सेवा मे अपनी सारी उम्र खतम कर दी है। अब इस सारी छोटी-सी गृहस्थी के परस्पर सम्बन्ध पर तुम विचार करो।

क्या तुम अपने अनपढ और सस्कारहीन पिता को, रूढिया

मे जकडी हुई माता को इसलिए तिरस्कृत और अपने से नीचा समझोगे कि तुम उनकी अपेक्षा सुसंस्कृत, शिक्षित और अधिक सामर्थ्य-सम्पन्न और धन उत्पन्न करने की योग्यता रखनेवाले हो ? क्या तुम उनके बडप्पन और बुजुर्गी को अस्वीकार कर दोगे ? इसी प्रकार क्या तुम अपने भाई और छोटे भतीजे को जो कि तुम से भी ज्यादा धन कमाने की शक्ति के अधिष्ठाता बन गए है अपने से बडा समझोगे और यह इच्छा न करोगे कि वे तुम्हारा आदर करें ? मैं समझता हू कि ऐसा करने का तुम साहस नही कर सकते ! और करोगे तो मैं कहूगा कि तुम मनुष्य नही, पशु हो। तुमको अपने माता और पिता के चरणो मे झुकना होगा और तुम्हारे छोटे भाई और भतीजो को तुम्हारे चरणो मे। यह मर्यादा का बन्धन है। यह सामाजिक अनुशासन है। इसको तुम पराधीनता कह सकते हो, लेकिन यह पराधीनता सामाजिक है। इस सामाजिक पराधीनता की जड मे, इस अनुशासन के बन्धन मे दासता नही है, गुलामी नही है, एक संस्कृति है, एक मधुर भावना है। माता और पिता के सम्बन्ध में यह जानते हुए भी कि वे तुम्हारी अपेक्षा अपढ और रूढ़ियों के गुलाम हैं, रहन-सहन की जानकारियो और संस्कृति से हीन हैं, तुम जानते हो कि उनमे तुम्हारे प्रति कितने प्रेम के भाव हैं। उसी प्रेम और त्याग की भावना जो उनमें तुम्हारे प्रति है उन्हें ऊंचा उठाए रखेगी। इसी प्रकार उन [illegible] और उन दूसरे तमाम अनुजों के प्रति भी [illegible] का विचार किए हुए कि वे यह है उनके प्रति आदर और [illegible] के भाव रखने [illegible] अब [illegible] मे तुम्हारे [illegible] स्थापित हैं, [illegible] है [illegible]

स्थापित करो।

मैं पूछना चाहता हू कि विद्वान का क्यो आदर करना चाहिए ? तुम कह सकते हो कि विद्वान ही मानव जाति की सभ्यता सस्कृति का आधार और उनका निर्माता है। परन्तु मैं यह कहता हू कि वह सभ्यता-सस्कृति का निर्माता तो जरूर है लेकिन एक वह किसान जोकि मनुष्य के लिए अन्न उत्पन्न करता है और एक वह कारीगर जो मनुष्य के लिए ससार को सजाता है, निर्माण करता है, अनेक वस्तुओ को बनाता है, सम्पत्ति को विकसित करता है, किसी भी हालत मे विद्वान से कम आदर-णीय और कम आवश्यक नही। इसी प्रकार एक दरिद्र श्रमिक की अपेक्षा एक धनिक व्यक्ति का क्यो आदर किया जाए ? क्यो उसको बडा माना जाए ? जब कि विश्व के निर्माण मे उस दरिद्र श्रमिक का भी उतना ही हाथ है जितना कि धनी के धन का। धनी का धन विनिमय का माध्यम है और इसलिए वह काल्पनिक वस्तु है। यदि विनिमय का माध्यम बदल दिया जाए तो धनी का धन कायम ही नही रह सकता। धन एक काल्पनिक वस्तु है। इसपर अर्थशास्त्र की दृष्टि से विचार किया जा सकता है।

अर्थशास्त्र ने धन की काल्पनिकता को बिलकुल प्रमाणित कर दिया है। कल्पना करो कि तुम्हारे हाथ मे सौ रुपये का नोट है जिससे एक क्विण्टल अन्न खरीदा जा सकता है। परन्तु निश्चय ही उस सौ रुपये के नोट की यह शक्ति काल्पनिक है। यदि वह राज्य उलट जाए जिसने उस नोट को जारी किया है, तो वह नोट तुम्हारे लिए अन्न नही खरीद सकता। जब तक नई सरकार उसे स्वीकार न कर ले—वह किसी काम की चीज नही, वह एक रद्दी कागज का टुकडा है। इसी प्रकार

आज सोने की कीमत पद्रह सौ रुपये तोला से भी अधिक है, किन्तु कल वह बीस रुपये तोला हो सकता है और पहले वह बीस रुपये तोला रहा भी है। यदि कोई मनुष्य आज एक करोड मूल्य के स्वर्ण का मालिक है तो कल उसके स्वर्ण का मूल्य सिर्फ बीस लाख ही रह जाएगा। जब धन का माध्यम इस प्रकार काल्पनिक, कृत्रिम और अनिश्चित है तब कोई कारण नही कि धन के माध्यम को इतना महत्त्व दिया जाए कि उसे मानव समाज मे एक प्रमुख पद प्राप्त हो। हमारे स्वार्थो ने हमे विवश किया है कि हम कमजोर मनुष्यो को अपनी शक्ति के आधार पर पीछे को ढकेलते चले जा रहे है।

तुम देखते हो कि नगर के पार्श्व मे हजारो छोटी-छोटी झोपडिया पडी हुई हैं। इन झोपडियो मे जो कि सील और अधेरे से परिपूर्ण हैं—जहा शीत, धूप और वर्षा के बचाव का कोई इत-जाम नही है—हजारो स्त्री-पुरुष, नवयुवक और वृद्ध, विवाहित और कुवारे रह रहे हैं, वही वे उत्पन्न होते है, वही वे बीमार पडते हैं और वही मरते है। वे सब श्रमिक मजदूर हैं। उनमे कुछ बढिया पत्थर और बारीक जाली का काम करनेवाले है, कुछ बहुत बढिया राज है, कुछ बहुत बढिया बढई है, कुछ आला दर्जे के कारीगर लोहार है। जब उनकी आरी और बसूली चलती है, जब उनकी छेनी और हथौडे चलते हैं तो लकडी, पत्थर और लोहे पर अमर कला का विकास होता है, सौंदर्य बिखर जाता है। वे सब एक धनी पुरुष के लिए सगमरमर का महल बनाने मे जुटे हुए हैं। उनकी कमर झुकी हुई है, चश्मा चढी हुई आखें अपने काम पर जमी हुई है। शरीर पसीने, धूल, मिट्टी और गर्द से लथपथ हैं। वे निरन्तर अपना काम कर रहे है। वे एक

से एक वढकर सुदर जालिया खोद रहे हैं। उन सबने मिलकर एक भव्य महल का निर्माण कर दिया है। वह महल गगनचुबी है। उसमे वायु और रोशनी का पूरा इतजाम है। वह कला का आदर्श नमूना है। उसमे सगमरमर का फर्श है, बिजली की रोशनी है। फ्लैश सिस्टम की लैटरीन और गुसलखाना है। रेडियो सेट लगे हुए है। विश्व की सारी विभूतिया उसमे मौजूद हैं। विशाल और आमोद-प्रमोद की सभी सामग्री उसमे मौजूद हैं। यह सब उन्ही भूखे नगे आदमियो ने घोर परिश्रम करके तैयार किया है और तैयार होने पर वे चुपचाप उसे उस धनी आदमी को सौंप देते हैं और अपनी झोपडियो मे लौट जाते है। वह धनी आदमी उन्हे निहाल नही कर सकता। करोडो रुपया पास रहने पर भी वह उसमे से उन्हे बहुत कम मजदूरी देता है। इतना कम कि जो उनके खाने और गुजर करने के लिए भी काफी नही है, परन्तु वे उसीमे सन्तुष्ट हैं। वह धनी पुरुष, जिसने कोई परिश्रम नही किया, बडे आराम से उस महल का मालिक बन जाता है।

वैसा ही एक दूसरा धनिक आता है, वह उनसे कहता है कि अपनी झोपडियो को यहा से उठाकर दूर जगल मे ले जाओ, यहा मेरा महल बनेगा। वे चुपचाप अपनी झोपडियो को उठाकर दूर जगल मे ले जाते है और वहा दूसरे धनिक का महल बनता है। वे ही लोग उसका निर्माण करते है। शताब्दियो तक वे इसी प्रकार का निर्माण करते रहे। उन्होने अनगिनत नगर बसा दिए, अनगिनत महल बना दिए, ससार मे सौंदर्य का विकास कर दिया परन्तु वे निरन्तर अपनी झोपडियो को उठाते-उठाते और पीछे को चलते चले गये। वे आज भी वैसे ही नगे-भूखे, उन्ही सील-भरी और अधेरी झोपडियो मे गुजर करते है। शिल्प और कला

के इतने ऊचे ज्ञान को अपने हृदय मे रखते हुए भी उन्हे इसके बदले मे कुछ प्राप्त नही हो पाता ।

क्या यह मनुष्यता का कलक नही ? वे एक मुट्ठी अन्न के लिए दूसरो की गुलामी करते हैं । जिस महल मे वे स्वय नही रह सकते, वह महल वे दूसरो के लिए बना देते है ? क्यो दूसरे लोग उनसे लाभ उठाते हैं और उन्हे कुचले चले जाते हैं ? यही मानव-समाज की दुर्भावना और पाप है तथा जीवन के लिए आवश्यक सुविधाओ का विषम और असमान वितरण है। इसमे मनुष्य समाज को स्वय उद्धार करना पडेगा । यह व्यवहार मनुष्य जाति मे देर तक नही कायम रह सकता ।

मजदूरी और धन का लालच बिलकुल झूठी कल्पना है । किसीको परिश्रम के बदले म धन देना कोरी विडम्बना है । चूकि हम कह चुके हैं कि धन एक काल्पनिक चीज है, इसलिए एक दिन मनुष्य को इन बातो पर विचार करना होगा और जब तक वह इसपर विचार नही करता उसे दासता को मजूर करना होगा । अब मजदूरो का सगठन हो रहा है, किसानो का उदय हो रहा है । दरिद्रों का एकीकरण हो रहा है और पूजी के सम वितरण के बीज बोए जा रहे है । जिस दिन पूजी का सम-वितरण होगा और दुनिया के साहूकार समाजवाद की श्रेणी मे आ जाएगे उस दिन मनुष्य पर आशीर्वाद की वर्षा होगी और ससार दु खी नही रहेगा, न दया और करुणा की आवश्यकता रह जाएगी । यह कभी भी सहन करने के योग्य बात नही है कि कुछ आदमी अत्यन्त ऐश्वय से रहे और बाकी सब भूखो मरें । मनुष्य हमेशा एक ही तरीके से रहेगा । वह सभ्यता और अनुशासन किस काम का है, जिसमे मनुष्य अभय और सुखी न हो ? इससे तो पशुओ

का वह जगत्—जहा कोई शासन, अनुशासन, राजसत्ता और कानून नही है, जहा सब बराबर हैं, जहा स्वच्छन्द जीव-जन्तु विचरण करते हैं—निसन्देह सभ्य मानवीय ससार से बहुत उन्नत और स्वाभाविक हैं।

तुम समझ लो कि 'गवनमेट' नाम से जिस सत्ता को पुकारा जाता है वह सत्ता अन्त तक मनुष्य पर कायम नही रह सकेगी। 'गवनमेट' का अर्थ है हुकूमत। हुकूमत मे एक बडा भारी घमड है, बडा भारी अधिकार है। यह अधिकार और घमड जब तक मनुष्य पर शासन करता है तब तक मनुष्य गुलाम रहेगा और जब तक मनुष्य गुलाम रहेगा तब तक वह परिपूर्ण मनुष्य नही कहला सकता। मनुष्य पर अनुशासन तो जरूर रहना चाहिए, पर वह अनुशासन अधिकार का नही, कत्तव्य का होना चाहिए।

मैं एक पिता या पति की हैसियत से अपने पुत्र या पत्नी पर अधिकार के नाते अनुशासन रखना चाहू और यह कहू कि उनको मेरी आज्ञा के अधीन रहना चाहिए क्योकि वह मेरी पत्नी या पुत्र है, तो निस्सन्देह मेरे इस अनुशासन को विद्रोह का मुकाबला करना पडेगा। पुत्र और पत्नी ये दोनो भी अपने अधिकारो के लिए लडेगे। सच पूछा जाए तो अधिकार की भावना लडाई की जड है।

मेरा यह दावा कि मैं इस देश मे रहता हू और यह देश मेरा है, मैं इस जाति मे उत्पन्न हुआ हू, इसलिए मेरा अधिकार है कि यह जाति मेरी है, यह राष्ट्र मेरा है, यह घर मेरा है, यह सम्पत्ति मेरी है और यह वस्तु मेरी है, ऐसे दावो पर आधारित ये सारी की सारी भावनाए गलत हैं। यह 'मेरी' का

ममत्व असन्तोष, ईर्ष्या द्वेष और विग्रह की जड है। जिस दिन मनुष्य के हृदय मे यह 'मेरी' और 'तेरी' के भाव निकल जाएगे, उसी दिन मनुष्य को सुख और शाति की नीद नसीब होगी, सब लडाई-झगडे खत्म हो जाएगे, झूठ और अन्याय मिट जाएगे और यह तब होगा, जब मनुष्य अपने अधिकारो की इच्छाओ और अहकार की भावनाओ को त्यागकर कर्त्तव्य के पथ पर आरूढ होगा।

अधिकार का अर्थ है स्वार्थ और कर्त्तव्य का अर्थ है सेवा। मनुष्य को स्वार्थ छोडकर सेवा ही का भाव ग्रहण करना होगा। यदि मैं तुम्हारी सेवा करना चाहता हू तो तुम मेरी सेवा करना चाहोगे। मैं तुम्हारे लिए बलिदान होना चाहता हू तो तुम मेरे लिए जरूर बलिदान होगे। परन्तु यदि मैं अपना अधिकार तुमपर जमाना चाहता हू तो तुम अपना अधिकार मुझपर जमाओगे। इसलिए अधिकार का नाश होना चाहिए, अधिकार का त्याग होना चाहिए और इसके स्थान पर कर्त्तव्य को ग्रहण करना चाहिए।

महाभारत युद्ध मे अठारह अक्षौहिणी सेना का विध्वस हो जाता है। बहुत कम आदमी जीवित रह जाते है। चारो ओर लाशें-ही-लाशें रह जाती हैं। विधवा बहुए और अनाश्रित माताए बिलखती-रोती चिताओ मे, युद्ध-क्षेत्र मे बिखरी लाशो मे अपने पुत्र और पतियो को ढूढती फिरती है। ऐसे दु ख और वेदना से पूर्ण वातावरण मे जब पाण्डवो को राजसत्ता प्राप्त हो जाती है, तब वे उसे भोग नही सकते। अनुताप की आग उन्हे जलाती है और वे उस प्राप्त हुई राजसत्ता और अधिकार के बोझ को फेंककर स्वय को नष्ट करने के लिए गम्भीर गर्त मे समा जाते हैं।

सरल, ठोस और शक्तिशाली जीवन बनाओ

सरल, ठोस और शक्तिशाली जीवन ही आदश जीवन है। आज हमारे जीवन टेढे, तिरछे, छल-कपट से परिपूण, बाहर कुछ और भीतर कुछ बने हुए हैं। वे भीतर से पोले है। उनमे बाहर मुलम्मा है। मुलम्मे की चमक दिखाकर हम विश्व को मोहित करना चाहते है। शक्ति हमारे जीवन मे नही है। शक्ति के स्थान पर क्रोध और बेचैनी है। इस प्रकार के जीवन देर तक कायम नही रह सकते। जीवन को चिरस्थायी बनाये रखने के लिए सबसे बडी आवश्यकता यह है कि हमारा जीवन सरल हो। हमारी जरूरतें थोडी हो। हमारी आकाक्षाए सीमित हो। इसका यह अथ नही है कि हमको अल्प से सन्तुष्ट रहना चाहिए। आचार्यों का मत है कि "हेतावीर्येत् फले न तु"— हेतु मे ईर्ष्या करो फल मे नही। दूसरे मनुष्य और जातियो की सफलताओ को देखकर उनके कारणो की जाच करो और उस माग पर अपने-आपको चलाओ। कारण मे प्रतिस्पर्द्धा करो और सम्भव हो तो उनसे आगे बढने की कोशिश करो। फल अपने-आप प्राप्त हो जायेगा।

गीता मे भगवान् कृष्ण यह कहते है कि काम किये जा, फल तुझे आप ही मिल जायेगा। फल की आकाक्षा मे आतुर मत हो। जीवन का यह रहस्यपूण सकेत है। जो जाति और समाज केवल फल की लिप्सा मे पडकर कोई काय करती है अन्त मे उसकी छीछालेदर होती है, और सफलता उसको नही मिलती। ससार की जो जातिया जीवन मे फल की आकाक्षा से कोई कार्य करती

हैं उनके कार्य पूरे नही उतरते। फल तो कार्य का परिणाम है। काम करने से वह अवश्य प्राप्त होगा। सीधे तरीके पर काम किये जाओ और सीधे तरीके पर फल को प्राप्त करो। सरल जीवन बनाने का एक यही रास्ता है। जिन्होने अपने जीवन को सरल न बने रहने देकर प्रपच और छल-कपट, तिकडम और झगडे-टटो मे फसा रखा है वे अपने जीवन मे ऐसी तकलीफ पाते हैं जैसे मकडी के जाले मे फसी हुई मक्खी, और अन्त मे उनको नष्ट हो जाना पडता है।

सरल जीवन का अर्थ यह है कि जीवन मे कोई ऐसी घटना और बात न हो कि जिसे तुम दूसरे से छिपाने की आवश्यक्ता समझो। तुम कोई ऐसा काय न करो जिसमे चोरी और छल करने की आवश्यकता हो। यदि तुम दरिद्र हो तो तुम्हें दरिद्रता को छिपाने की आवश्यक्ता नही। दरिद्र होना कोई गुनाह नही है और अमीर होना कोई गुण नही है। यह देखा जाता है कि अमीर लोग अपनी अमीरी को दुनिया पर प्रकट करने का कोई अवसर हाथ से नही चूकने देते। इसके विपरीत लोग अपनी दरिद्रता को छिपाने मे भी कोई कसर नही रखते।

इस प्रकार लोगो के दो जीवन बन गये हैं। एक बाहरी जीवन है और एक असली जीवन है। ये दो जीवन ही असत्य हैं। इस असत्य को जीवन से निकाल देना चाहिए। तुम्हारे घर में एक मेहमान आता है तो तुरत घर मे दौड-धूप शुरू हो जाती है। एक पडौसी से तुम कालीन माग लाते हो। दूसरे से चादी के बतन मगाये जाते हैं। तीसरे से और बढिया सामान मगाया जाता है। खान-पान और कृत्रिम सम्पन्नता की असत्य बातें जितनी सम्भव हो सकती हैं काम मे लाई जाती है। इस बात को

छिपाने की कोशिश की जाती है कि तुम गरीब हो और तुम्हारे पास ऐश्वर्य और आराम के साधन कम हैं। जब तक मेहमान घर मे हाजिर रहता है, तब तक तुम उसपर खान पान का आडम्बर, बातचीत का ढोंग, रहन-सहन की कृत्रिमता प्रकट करते रहते हो। क्या वह मेहमान तुम्हारी ही तरह अपने घर मे सामान्य तौर पर रहता और खाता-पीता नही है? क्या यह उचित नही है कि जिस प्रकार तुम्हारा रहन-सहन हो, खान-पान हो, घर का वातावरण हो तुम साहस करो कि सरल और अकपट भाव से वही मेहमान के सामने प्रकट हो ताकि तुम्हे कभी अपनी कमी खुल जाने का भय न रहे, न कभी लज्जित होने का अवसर मिले? यह दो जीवन कितने दु खदायी, कितने अस्वाभाविक हैं। इसपर जितना ही विचार किया जाएगा उतना ही इनका तथ्य ज्ञात होगा।

कितने ही लोग इस प्रकार के बाहरी और भीतरी जीवनो के भीतर पिस मरते हैं। विवाह-शादियो मे, उत्सवो मे और ऐसे ही विशेष अवसरो मे लोग कर्ज लेते है, चोरी करते हैं, जालसाजी तक करते हैं और जेलखाने जाते हैं। किन्तु बाहरी और भीतरी जीवन को एक नही कर सकते। मैं तुमसे यह कहना चाहता हू कि अगर कोई दोष है तो वह दरिद्र होना नही, अमीर होना है। दुनिया मे कोई आदमी परिश्रम करके अमीर नही हुआ। अमीर होना अस्वाभाविक है। अमीर होने के लिए अन्याय और अत्याचार, दगा और निष्ठुरता, प्रभुत्व और दूसरो के अधिकारो को हडपने के तरीके इस्तेमाल करने पडते है। फिर यह काम तुम्हारे बाप-दादो ने किया हो या तुमने स्वय किया हो। दौलत, धन-सम्पत्ति स्वय कमाई हुई हो या

तुम्हारे बाप-दादो की कमाई हुई हो, एक ही बात है। वह दोष तो है ही, सामाजिक अभिशाप भी है। एक दिन समाज को इस अभिशाप से छूटना होगा। इसके विरुद्ध गरीब होने मे कोई भी दोष नही है। परन्तु इसका यह अर्थ नही कि मनुष्य इच्छापूर्वक गरीब बने। इच्छापूर्वक तो मनुष्य को धनी ही बनना चाहिए। धन मे बडी भारी शक्ति है। धन से बडे बडे कम हो सकते हैं। परन्तु धनी बनने हो मे जीवन को समाप्त नही कर देना चाहिए तथा धनी होना जीवन का गुण नही मानना चाहिए, न दरिद्रता से लज्जित ही होना चाहिए।

जो मनुष्य अपने जीवन को सरल बनाएगा, ठोस बनाएगा, जिसका भीतर और बाहर एक-सा होगा, जिसके ऊपर सुनहरी मुलम्मा नही होगा, वह शक्तिशाली और कर्मठ बन सकेगा। भले आदमियो के-से कपडे पहनकर कोई भला नही बन सकता। लम्बी धोती पहनकर और तिलक लगाकर कोई पण्डित नही बन सकता। नकली काच और पत्थर के जेवर पहनकर हीरे-मोती पहनने का शौक पूरा नही किया जा सकता। नकल नकल है असल असल। तुमको चाहिए कि तुम जैसे हो वैसे ही अपने को प्रकट करो और किसी भी भाति अपनेको लज्जित न होने दो। यदि तुम दरिद्र हो और कोई सरल मार्ग ऐसा नही है, जिससे तुम धनवान बन सकते हो तो तुम अपनी दरिद्रता को एक शृगार का रूप दे दो। यदि तुम अपढ हो तो अपने उस अपढपन को शृगार का रूप दे दो। तुम बच्चो को देखते हो, स्त्रिया को देखते हो। बच्चे और स्त्रिया, अपेक्षाकृत कितने अज्ञानी होते हैं। परन्तु इनके अज्ञान मे एक सौन्दय है, एक सरलता है, एक भोलापन है। इसलिए बच्चो और स्त्रियो का

ज्ञान कोमल और सुन्दर भावनाओ से परिपूर्ण होता है और उसे देखकर मनुष्य के हृदय मे आह्लाद, प्रेम और विश्वास उत्पन्न होता है। हमारे हृदयो मे झूठमूठ ये भावनाए उत्पन्न हो गई है कि ज्ञानी बनना बहुत महत्त्वपूर्ण है, पडित बनना बहुत आवश्यक है। जो पुरुष ज्ञानी और बुद्धिमान होता है उसका समाज मे आदर होता है।

परन्तु मैं एक गम्भीर प्रश्न सारे ससार के मनुष्यो से करना चाहता हू कि ऐ मनुष्यो ! तुम यह बताओ कि दुनिया मे पाप कहा है ? क्या ईंट पत्थरो के अन्दर पाप है ? क्या वृक्ष-वनस्पतियो के अन्दर पाप है ? जगल, वन और पर्वतो मे पाप है ? नही। यहा पाप नही है । दुनिया मे यदि कही पाप है तो वह मनुष्य के मस्तिष्क मे है। जिस दिन ससार से मनुष्य का मस्तिष्क नष्ट कर दिया जाएगा उन दिन जगत् से पाप भी नष्ट हो जाएगा। विचारने की चीज तो यह है कि मनुष्य के मस्तिष्क मे यह पाप कहा से आया है ? और मनुष्य के मस्तिष्क मे इसका निवास रहने का क्या कारण है ? इसका एक ही उत्तर है। वह यह कि मनुष्य के मस्तिष्क मे ज्ञान है, इसलिए मनुष्य के मस्तिष्क मे पाप है। जहा ज्ञान है वहा पाप है। पाप का केन्द्र ज्ञान है। ज्ञान और पाप का साथ है । जहा ज्ञान रहेगा वहा पाप रहेगा। जहा पाप रहेगा वहा नाश रहेगा।

पाप किसे कहते है, इसपर भी विचार कर लेना चाहिए। पाप वह है जिसमे सामाजिक मर्यादा और अनुशासन नही है । पाप उस काम को जिसमे सामाजिक मर्यादा और अनुशासन है नही माना जा सकता। एक कुमारी युवती कन्या के साथ यदि कोई व्यक्ति किसी प्रकार की कुचेष्टा करता है तो समाज उसे

सहन नही कर सकता । उसे पाप समझता है । परन्तु थोडी-सी विवाह की धार्मिक अनुष्ठान और सामाजिक अनुशासन की क्रियाए सम्पादित होने के बाद उस पुरुष को उस युवती कन्या के प्रति वे सब चेष्टाए करने का अधिकार हो जाता है कि जिन्हे पहले पाप माना गया था। वे सब चेष्टाए अब पाप नहीं मानी जाती। इसी प्रकार और भी अनेक बातें है।

विचारना यह है कि मनुष्य के मस्तिष्क मे ज्ञान ही पाप का कारण है ? ज्ञान और पाप मे इतना अबाध सम्बन्ध क्यो ? यही विवाद की बात है। जहा ज्ञान है वहा स्वार्थ की तराजू है। करने और न करने की विवेक-बुद्धि है । विवेक-बुद्धि के द्वारा मनुष्य यह जान लेता है कि यह काम करने के योग्य है और वह काम करने के योग्य नहीं है। परन्तु स्वार्थ और आवश्यकताओ के बोझ से विवश होकर जब वह उस न करने योग्य कार्य को करने लगता है तब वह पाप के मार्ग पर अग्रसर होता है। परन्तु पाप की सफलता तो प्रबल बुद्धिवाद ही पर निर्भर है। पुण्य मूर्ख लोग भी कर सकते है परन्तु पाप बुद्धिमान ही कर सकते है। कोई भी पाप करने के लिए सत्य को छिपाना आवश्यक है। जब मनुष्य यह समझ लेता है कि अमुक कर्म पाप है तब वह अपनी बुद्धिमत्ता से उसको ऐसा रूप देता है कि या तो वह दुनिया पर प्रकट ही न हो और प्रकट हो तो पुण्य के रूप में प्रकट हो। तुम यदि किसीको दान देना चाहते हो, किसीकी सेवा करना चाहते हो तो उसके लिए तुम्हे बुद्धिवाद की आवश्यकता नही, ज्ञान की भी आवश्यकता नही। तुम अज्ञानी होने पर भी यह कर सकते हो। परन्तु यदि तुम किसीकी जेब काटना चाहते हो, कोई जाल रचना चाहते हो तो

उसके लिए तुम्हे बहुत बुद्धि खर्च करनी पडेगी। बिना बुद्धि खर्च किए तुम जाल नही रच सकते, जेब नही काट सकते। इस लिए मैं तुमसे यह कहना चाहता हू कि समार को, ससार के भविष्य को ज्ञानियो के हाथ मे देना खतरनाक है। ससार का भविष्य तो उन्ही लोगो के हाथ रहना चाहिए जिनमे ये तीन बातें हो एक यह कि उनका जीवन सरल हो, दूसरा यह कि उनका जीवन ठोस हो, तीसरा यह कि उनका जीवन शक्ति-सम्पन्न हो। जीवन की ये तीन योग्यताए दुनिया की सबसे बडी योग्यताए है।

जिस व्यक्ति, ममाज या जाति मे ये तीन योग्यताए हो, उसका जीवन सफल और उन्नत हो सकता है। शक्ति एक बडा भारी साधन है। जो वस्तु जितनी सरल और ठोस होगी वह वस्तु उतनी ही शक्तिसम्पन्न होगी। जिस वस्तु मे जितने दाव-पेच और उलट-फेर होगे, वह वस्तु उतनी ही कमजोर और शक्तिहीन होगी। शक्ति एक परिणाम है। परन्तु सफलता का वह सबसे महत्त्वपूर्ण साधन है। जो घडा खाली होता है, वह छलकता है, ज्यादा बोलता है। जो बादल गरजता है, वह बरसता नही है। इसलिए जीवन को सरल बनाओ, ठोस बनाओ *और शक्तिशाली बनाओ अर्थात्* मन, वचन और कर्म मे एक बनो। जो बात मन मे सोचो, वही जबान से निकालो, और जो बात जबान से निकालो वही बात करके दिखाओ। इम प्रकार मन, वचन और कर्म मे जब एकता होगी तब तुम्हारा जीवन निर्भय और सुखी होगा। सारे ससार का भय और लज्जा ग्लानि और तिरस्कार उसी अवस्था मे प्राप्त होता है और जब मन मे कुछ, वचन मे कुछ और कर्म मे कुछ और भावना हो। मन, वचन

और कम मे जो कोई भी एक है वह सीधे माग पर है। वह जैसा भीतर है वैसा बाहर है। वह ठोस सोने की एक डली है। उस डली को कसौटी पर कसिए, काट डालिए, तपा डालिए, टुकडे-टुकडे कर डालिए वह असल सोना साबित होगी। किसी हालत मे उसकी कीमत कम नही हो सकती। उसका मूल्य स्थायी है और वह मूल्य बराबर बना रहेगा। यह बात उस पोले गोले की नही है कि जो ऊपर से फूला हुआ और भीतर से खोखला है और जिसके ऊपर सुनहरी मुलम्मा किया हुआ है। जिन जातियो का जीवन इस प्रकार पोला और मुलम्मा किया हुआ है, जिनमे ऊपरी चमक-दमक है, उनकी दुनिया मे कोई कीमत नही हो सकती। उनमे कोई शक्ति ही नही। वे चाहे जब नष्ट की जा सकती हैं। चाहे जब उनकी चमक दमक उतारी जा सकती है और उनका असत्य आवरण प्रकट किया जा सकता है।

८
सघर्ष करो
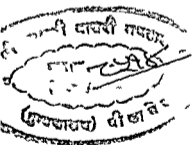
सघप करो। युद्ध करो। लडो। यदि तुम ऐसा करोगे तो जीवन का रत्न तुम्हारे हाथ लगेगा। सघप जीवन का लक्षण है। कब्र मे जैसे मुर्दा पडा रहता है समाज मे उस प्रकार चुपचाप पडे रहना जीवन का चिह्न नही है। जो जातिया चुपचाप मुर्दे की भाति पडी रहती हैं वे नष्ट हो जाती है। जो पानी गढे मे सडता है और जिसमे प्रवाह नही है उसमे कीडे पड जाते है और वह दूषित हो जाता है। बहती हुई नदी का जल स्वच्छ होता है। जहा प्रवाह है, जहा धारा है, जहा वेग है वहा जीवन है। सघर्ष का नाम ही जीवन है। कायर पुरुप सघर्ष से डरते हैं परन्तु तेजस्वी पुरुष मे सघप के प्रति भय का भाव एक क्षण के लिए भी नही टिक सकता। यह सघर्ष चाहे स्त्री से हो, चाहे माता से हो, लाभ की वस्तु है। सघर्ष का अथ ही यह है कि प्रगति के अवरोध का विरोध किया जाए। साइकिल का पहिया घूम रहा है और साइकिल आगे बढती चली जा रही है। पृथ्वी क्षण-क्षण पर उसका अवरोध करती है और पहिये की गति निरन्तर उसका प्रतिकार करती चली जा रही है। इस अवरोध के प्रतिकार से साइकिल के पहिये मे जो गति पैदा हुई है और साइकिल पर सवार पुरुप के बलपूवक चरणाघात की जो गतिशील प्रतिक्रिया साइकिल के पहिये पर अवतरित होती है, वही जीवन का लक्षण है। यही प्रगति है। यही सघप है। सघर्ष और प्रगति परस्परापेक्षी है, इसी तरह प्रगनि और जीवन भी। इसीलिए

संघर्ष ही जीवन है। संघर्ष से हीन होने पर मृत्यु होती है। जो जातियां संघर्ष को त्याग देती है, मर जाती हैं। संघर्ष का त्याग आत्मघात कर डालना है।

भारतवर्ष के वेदान्त सिद्धान्त ने सारे देश को प्रगतिहीन और संघर्षहीन बना दिया। सारा देश सुस्त और अकर्मण्य हो गया। माता, पिता, भाई, बन्धु दौलत और सम्पत्ति सब मिथ्या है। *इनका सम्बन्ध झूठा है। संसार भ्रम है।* सूरज, चांद, तारे ये माया हैं। जो कुछ भी दीखता है वह मिथ्या है। हम स्वयं भी मिथ्या हैं। इस प्रकार की काल्पनिक धारणाओं ने करोड़ों मनुष्यों से भरे हुए देश को निस्तेज और मुर्दार बना दिया है। जिस देश का दर्शन यह कहे कि जो कुछ जगत् में है वह सब *मिथ्या है और जगत् में किसीके प्रति भी हमें कुछ करना-धरना* नहीं है उस देश के जीवन का क्या ठिकाना हो सकता है! मैं यह स्वीकार करता हूं कि वेदान्त की यह निराशापूर्ण भावना देश में उस समय पैदा हुई थी जब कि देश में राजनैतिक अंधकार छाया हुआ था। तातारी आततायियों और पठानों की नंगी तलवार के सामने विध्वंस नंगा नाच नाच रहा था, खून की नदियां बहाई जा रही थीं। करोड़ों मनुष्यों से भरे हुए देश का कोई धनी-धोरी नहीं था। लोग लुटते थे, पिटते थे और हाय करके रह जाते थे, उनकी बहू-बेटियों की लाज लूटी जाती थी और वे कुछ भी नहीं कर पाते थे। वे शक्ति से हीन थे, संगठन और एकता की भावना से अनजान थे, सत्ता-रहित थे। इसी प्रकार शताब्दियां गुजर गई थीं।

बाप-दादों ने ये तकलीफें सहीं, बेटे और पोतों ने भी सहीं। पीढ़ियां इसी प्रकार के वातावरण में बीत गईं। इस हालत में

इस प्रकार का दर्शन उत्पन्न हुआ, ऐसी निराशा की भावनाएं पैदा हुईं। संसार और सांसारिक पदार्थों को मिथ्या समझने की कल्पनाएं करना कोई अनहोनी और अस्वाभाविक बात नहीं है। परन्तु आज वह दिन बदल गया। आज मानव-समाज ने नवीन जागरण का जीवन प्रारम्भ किया है। सारे विश्व की महाजातियां नवीन जीवन, नवीन आशा और नवीन संगठन को लेकर आई हैं। सामूहिक शक्तियों की संगठित सत्ताओं का प्राबल्य होता चला जा रहा है। इसलिए अब वेदांत का निस्तेज और निराशावादी दर्शन सुनने की आवश्यकता नहीं है। अब तो उठो, लड़ो और काम करो। जूझ जाओ और अपने निर्णय से न हटो। यही एक ऐसी बात है जो रात और दिन मनुष्य के मस्तिष्क में रहनी चाहिए। इसीका नाम संघर्ष है। सोते, बैठते, खाते, उठते—प्रतिक्षण यदि हम अपने जीवन को संघर्षमय बना लेंगे, तो फिर हमारी विजय ही विजय है।

निस्संदेह संघर्ष का यही अर्थ है कि हमारे जीवन में एक अशान्ति हो, परन्तु वह अशान्ति व्याकुलता से परिपूर्ण न हो। उस अशान्ति में एक आकांक्षा हो, एक जीवन हो, एक अभिलाषा हो और वह हो आगे बढ़ने की, उन्नत होने की, त्रुटियों को पूर्ण करने की और संगठन करने की। मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि नवीन युग की नवीन ज्योति का लाभ उठाओ। पुरानी दकियानूसी चीजों को भूल जाओ। पिता, माता और दूसरे बुजुर्ग तुम्हारी नवीन जागृति में रोड़े अटकाते हैं, तुमको बांधकर रखना चाहते हैं तो यह उनके लिए स्वाभाविक है। वे बीते हुए जमाने के आदमी हैं। उनके संसार और जीवन बीते हुए हैं। वे जरूर ऐसा करेंगे। लेकिन तुम उनसे निर्भयतापूर्वक लड़ पड़ो,

विरोध करो और उनकी आज्ञाओ को मानने से इन्कार कर दो, और प्रगति के मार्ग पर बिना अटके और हिचके आगे बढते चले जाओ। अपनी पत्नी से युद्ध ठान दो, यदि वे रूढियो की गुलाम हैं, कायर है, भीरु है, अज्ञानी है। यदि वे कन्धे मे कन्धा मिडा-कर तुम्हारे साथ प्रगति के माग पर नही चल सकती हैं, तो उन्हे बलपूर्वक घसीटकर ले चलो, उनको पीछे मत छोडो। उनको अपने जीवन की संगिनी बनाओ। इसी प्रकार भाई, बन्धु, कुटुम्ब, परिवार, पास-पडौसी, देश, समाज और जाति के जो भी लोग तुम्हारे चारो तरफ, तुम्हारे सम्पर्क मे हो उनमे जो-जो विरोधी तथा प्रगति मे बाधक हो—उन सबसे संघर्ष करो, युद्ध ठान दो। अन्त तक लडते रहो, जब तक कि वे और तुम एक न हो जाओ।

परन्तु याद रखो, युद्ध का अन्तिम परिणाम क्या होता है। दो पक्षो मे से एक हारता और एक जीतता है। हारता वह है जो कमजोर है, जीतता वह है जो बलवान है। यदि तुमने सच्ची मानवीय प्रगति को ग्रहण किया है, तो बलवान तुम हो। यदि तुम्हारा जीवन सरल, ठोस और शक्तिशाली है, तो बलवान तुम हो। यदि तुमने आधुनिकता का प्रतिनिधित्व किया है, युग-धर्म का अनुसरण किया है, प्रगति के माग पर दृढतापूर्वक कदम बढाए हैं, तो बलवान तुम हो। तुम्हारी निश्चय विजय होगी। तुम्हारे समस्त विरोधी पराजित होगे। कुछ परवाह नही कि तुम अकेले हो और वे सब बहुत हैं। विजय की सत्ताए तुम्हारे साथ हैं तुम्हारे अन्दर आत्मविश्वास और दृढता की भावनाए पैदा होनी चाहिए। यही आत्मविश्वास तुम्हे विजयी बनाएगा और तुम्हें जीवन देगा। विजयी होने के बाद भी संघर्ष तो

कायम ही रहना चाहिए। क्योकि संघर्ष ही प्रगति है और प्रगति ही जीवन है। ये विरोध अवरोध कभी समाप्त नही होगे। यह प्रकृति का स्वभाव है। जिन लोगो के ये विचार है कि हमे प्रकृति के अनुकूल रहना चाहिए, मैं उनसे सहमत नही हू। प्रकृति तो वन्य पशु के तुल्य है। उसको पालतू बनाना और अपने अनुकूल बनाना—यह अपने हाथो का चमत्कार होना चाहिए। मानवता का लक्षण तो यही है कि हम उस प्रकृति को, जो कि स्वाभाविक रूप से सभी के लिए है, अपनी खास आवश्यकताओ के लिए अपने अनुकूल बनाए। प्रकृति का हम यदि अनुकूल निर्माण कर सकें तो हम समाज को बहुत सुदर बना लेंगे। समाज को सुन्दर बनाने के लिए, प्रकृति को सजाने के लिए हमको 'कलापूण निदयता' का प्रदशन करना होगा। यह कलापूण निदयता क्या चीज है, यह मैं तुम्हे बतलाता हू।

कल्पना करो कि तुमने एक जमीन खरीदी, एकदम बीहड और जगली। तुम उस जमीन मे एक सुदर-मनोरम बाग लगाना चाहते हो। तुम उसकी पहले पैमाइश करोगे। जमीन की ड्रेसिंग कराओगे। छोटे छोटे खेत और क्यारिया निकालोगे। सडक बनाओगे। पौधे रोपोगे। फल के बीज बोओगे और जिस वृक्ष को जहा ठीक समझोगे, वही पर उसको उगाने और बढाने की कोशिश करोगे। इस काम के लिए तुम्हे कलापूर्ण निदयता का आश्रय लेना होगा। तुम्हे तमाम जगली पेडो को, पौधो को, बबूलो को, झाडो को कठोरतापूवक उखाडकर फेंक देना होगा। ये सब झाड, बबूल, काटे शताब्दियो से इस जमीन पर उगते आए हैं, वे चिल्लाएगे, पुकारेंगे और कहेगे कि इस जमीन मे पैदा होने और उगने का हमारा हक है। हम हमेशा से यहा

उगते आए हैं—स्वच्छन्दतापूर्वक। किसीने हमको नहीं रोका किसीने हमको नहीं उखाड़ा। अब तुम हमको क्यों उखाड़ते हो? परन्तु उनका यह हक, उनका यह उगने और बढ़ने का अधिकार तुम्हें स्वीकार नहीं करना होगा, तुम उनको उखाड़ ही डालोगे। यही कलापूर्ण निर्दयता है। इस कलापूर्ण निर्दयता का परिणाम यह होगा कि एक दिन सुन्दर और नेत्रों को तृप्त कर देनेवाला बगीचा बन जाएगा। जिसमें बड़े-बड़े सुन्दर फूल, बड़ी-बड़ी मनोरम क्यारियाँ, एक-से एक बढ़कर रौसें और लता-मण्डप देखने को मिलेंगे।

सौन्दर्य के विस्तार के लिए इस प्रकार की कलापूर्ण निर्दयता जीवन में करनी ही चाहिए। समाजरूपी जगत को एक सुन्दर बगीचा बनाने के लिए एक प्रकार की कलापूर्ण निर्दयता का अनुसरण करना अनिवार्य है। इसके बिना काम नहीं चल सकता। रूढ़ियों के गुलाम अन्ध-परम्परा के विश्वासी, शून्य-मस्तिष्क लोग जब क्रान्ति की भावना से विचलित होते हैं, तब इसी प्रकार रोते और चिल्लाते हैं, जैसे कि ये कटीले झाड़ और बबूल के पेड़। समाज की क्रान्ति के नेताओं को इन तमाम कोमल कल्पनाओं को छोड़ देना चाहिए और कलापूर्ण निर्दयता का आश्रय लेकर उन तमाम दुर्बल और निकम्मी वस्तुओं को नष्ट कर देना चाहिए और उनकी जगह उत्कृष्ट और उन्नत वस्तुओं का रोपण करना चाहिए तभी समाज का नवीन निर्माण हो सकता है और समाज सुन्दर और सुखद हो सकता है।

गुट गढो

गुट गढो। अकेले मत रहो। जितने अधिक साथी बना सको बनाओ। उनपर विश्वास करो और उनमे अपना विश्वास पैदा करो। विश्वास करने के लिए और विश्वास पैदा करने के लिए बडी-से-बडी कीमत चुका दो। बडे लोगो का कहना है कि "सघे शक्ति कलौ युगे।" कलियुग मे शक्ति सघ मे है, एकत्रित रहने मे है। मैं कलियुग और सत्ययुग के पाखण्ड को नही मानता। मैं तो यह कहना चाहता हू कि हमेशा से मनुष्य की शक्ति सगठन मे है। मनुष्य एक सामाजिक जीव है। सामाजिक जीवन की आवश्यकताओ को पूण करने के लिए उसे एक-दूसरे से मिल-कर रहना चाहिए। प्रत्येक मनुष्य मे एक-सी योग्यता नही, एक सी शक्ति भी नही। प्रत्येक आदमी के विचार, आचार, दिमाग की बनावट, काम की अभिलाषा अलग-अलग है। प्रत्येक आदमी अपनी-अपनी योग्यता और अभ्यास के अनुसार अलग-अलग कार्य करता है। उसके ये काय सिर्फ इतने ही नही हैं कि उस व्यक्ति के लिए काफी हो, बल्कि उनकी जरूरत तो समाज को भी है। सिंह को जब भूख लगती है, आखेट को निकलता है। आखेट मार और खाकर जब उसका पेट भर जाता है तो तमाम दिन पडा सोता रहता है। कुछ और क्षुद्र जन्तु ऐसे होते हैं, जो कि दिन-रात आखेट पर आक्रमण करने की ताक मे रहते हैं, परन्तु उनका उद्देश्य केवल उदर-पूर्ति ही होता है।

यह उदर-पूर्ति और आत्मरक्षा तो पशुओ के धम है। मनुष्य

अपने जीवन को, जीवन की समस्त शक्तियो को उदर पूर्ति और आत्मरक्षा मे खच कर दे, तो पशु से उसके जीवन मे कोई अन्तर नही रह जाता। उसे अपनी शक्तियो का उपयोग मानव समाज के लिए करना चाहिए। जो मनुष्य मानवीय कल्याण के लिए जितना अधिक काय करेगा, वह उतना ही मानव समाज मे प्रेम और आदर का पात्र बनेगा। प्राचीन ऋषि मुनियो ने मानवीय कल्याण के लिए बडे बडे आदश स्थापित किए। बडे-बडे वैज्ञानिक और बडे बडे चिकित्सक अपने सम्पूण जीवन की आहुति देकर मनुष्य का कल्याण करने वाले आविष्कार तथा भयानक रोगो का प्रतिकार करने वाली ओषधियो का निर्माण करते हैं। उनका यह निर्माण मनुष्य पर आशीर्वाद है, मनुष्य की सेवा है। मनुष्य की यह सेवा उन्हे मनुष्य का मित्र और मनुष्य का प्रेमी बनाती है। जो महापुरुष इस प्रकार मानवीय सेवा करता है, मनुष्य उसका श्रद्धालु और प्रेमी बन जाता है। बुद्ध और ईसा मसीह, कृष्ण और राम, दयानन्द और सुकरात, अरस्तू और न्यूटन तथा गाधी, ये सब और इसी जाति के और पुरुष भी इसी मानव महाकल्याण के कर्ता-धर्ता रहे और आज इसीलिए ससार के करोडो मनुष्य इन महामानवो के चरणो की पूजा करते है। मनुष्य इनका अनुकरण करने मे अपने को गौरवशाली अनुभव करता है।

इन महापुरुषो मे करोडो मनुष्यो को अपना अनुगामी बनाने की शक्ति कैसे पैदा हुई ? कैसे करोडो मनुष्यो का गुट गढ लेने की ताकत पैदा हुई, इसपर हमे विचार करना चाहिए। उस शक्ति का रहस्य केवल यह था कि उन्होने मानवीय कल्याण और मानवीय हितकामना और मानवीय सेवा मे अपने क्षुद्र

जीवन को गला दिया। वे बीज बनकर जन्मे थे—वे बोए गए, फूटे, उनमे अकुर निकले और फिर उनमे अनेक बीज और फल पैदा हुए। जो मनुष्य गुट नही बना सकता, सगठित नही हो सकता, सगठन नही कर सकता, सच्चे और अकपट मित्रो का समूह नही बना सकता—वह जीवन मे कभी सफल हो ही नही सकता। वह दुनिया मे असहाय है और अकेला रह जाएगा। हिटलर की प्रारम्भिक सफलता का कारण केवल उसके बारह मित्रो का एक गुट था। हिटलर के ये बारहो मित्र उच्चकोटि के विद्वान, सामर्थ्यवान, महान नीति का पालन करने वाले और ऊचे दर्जे के मानवीय गुणो के अधिष्ठाता नही थे, उनमे वे सब मानवीय दुर्बलताए थी, जो साधारण मनुष्यो मे होती हैं। हिटलर स्वय भी इन मानवीय दुर्बलताओ से रहित नही था। तो भी उसने जबदस्त गुट गढा। इन बारहो मित्रो ने मिलकर विश्व की शक्तियो का विध्वस कर डाला, भूमण्डल के नक्शे को बदल दिया, महाजातियो को छिन-भिन्न कर डाला। गुट बनाने की शक्ति और उपयोगिता का इससे अधिक और प्रमाण क्या मिल सकता है। चोर और डाकू, लुटेरे और बदमाश, हत्यारे, ठग और जेबकट लोग भी गुट बनाकर ही अपने काम मे सफलता प्राप्त करते है।

देखा गया है कि लुच्चे-लफगे और बदमाश जितनी आसानी से गुट बना सकते है और वह गुट जितना अधिक सगठित और विश्वस्त होता है, उतना विश्वस्त और सगठित गुट पढे-लिखे और विचारशील लोग नही पैदा कर सकते। इसका कारण यह है कि पढे-लिखे और विचारशील पुरुषो मे व्यवहार-बुद्धि का बडा भारी अभाव होता है। वे घमण्डी और आदर्शवादी होते

अपने संगठन में व्यक्तिगत स्वार्थ को अलग रखो। व्यक्ति
गत स्वार्थ आगे आया कि तुम्हारा संगठन नष्ट हो जाएगा
महान पुरुषों के जीवन में, जो संगठन करने में सफल हुए
त्याग की वृत्ति ही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण साबित हुई है
मुहम्मद साहब के दामाद अली, जिन्हें मुहम्मद बहुत प्यार कर
और बहुत मानते थे और जो अपने शहर के आला अफसर
एक बार जब कचहरी से लौटकर घर आए तो देखा चूल्हा ठ
पड़ा हुआ है, खाना तैयार नहीं हुआ। बीबी से पूछा तो मालू
हुआ कि घर में कुछ सामान ही नहीं है—खाना बने तो कहा
से। हजरत अली ने अपनी चादर को संभाला और किसी का
की तलाश में घर से बाहर निकले। दिन छिपने लगा था औ
थे तमाम दिन के थके मांदे थे। उनको बहुत-से मुकदमे कर
पड़े थे और बहुत से कजिए चुकाने थे। बस्ती के बाहर आक
देखा—एक बुढ़िया कुएं से डोलचियों के द्वारा पानी भर र
है और खजूर के पेड़ों को सींच रही है। हजरत ने उसके पा
आकर कहा, "बुड्ढी अम्मा, लाओ, मैं तुम्हारी डोलचियां खी
दूं। तुम मुझे कुछ खाने को दे देना।" बुढ़िया ने कहा कि ए
डोल का एक छुहारा दूंगी और हजरत अली [illegible] स्वीका
कर लिया। उन्होंने [illegible] ोल पानी खी, [illegible]
छुहारे चादर के पल्ले [illegible] व घर ल
मुहम्मद साहब उनसे [illegible] 'कहा
तब उन्होंने सब हकीकत [illegible] ,"
लौटकर, [illegible] जो
की सा[illegible] मैंने
छुहारे [illegible]

हजरत मुहम्मद की आखो मे आसू आ गए। उन्होने अपने सुयोग्य दामाद को छाती से लगा लिया और कहा, "खुदा की कसम, इनमे से आधे मेरे और आधे तुम्हारे। मैं ऐसी नियामत को छोड नही सकता। तुम्हारी बीवी इस वक्त कुछ और बन्दोबस्त कर लेगी।"

सगठनकर्ता के त्याग का यह एक उदाहरण है। त्याग की ऐसी ही भावना जब जीवन पर कायम रहे, तभी मनुष्य दूसरो से बडा बन सकता है। दूसरो के स्वार्थो की रक्षा और अपने स्वार्थो के बलिदान की भावना जिस पुरुष मे होगी वही सगठन कर सकेगा, गुट बना सकेगा और अपनी पार्टी का लीडर बन सकेगा।

अपने सगठन मे व्यक्तिगत स्वार्थ को अलग रखो। व्यक्तिगत स्वार्थ आगे आया कि तुम्हारा सगठन नष्ट हो जाएगा। महान पुरुषो के जीवन मे, जो सगटन करने मे सफल हुए हैं, त्याग की वृत्ति ही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण साबित हुई है। मुहम्मद साहब के दामाद अली, जिन्हे मुहम्मद बहुत प्यार करते और बहुत मानते थे और जो अपने शहर के आला अफसर थे, एक बार जब कचहरी से लौटकर घर आए तो देखा चूल्हा ठडा पडा हुआ है, खाना तैयार नही हुआ। बीवी से पूछा तो मालूम हुआ कि घर मे कुछ सामान ही नही है—खाना बने तो कहा से बने। हजरत अली ने अपनी चादर को सभाला और किसी काम की तलाश मे घर से बाहर निकले। दिन छिपने लगा था और वे तमाम दिन के थके मादे थे। उनको बहुत-से मुकद्दमे करने पड़े थे और बहुत से फैसले चुकाने थे। बस्ती के बाहर आकर देखा—एक बुढिया कुए से डोलचियो के द्वारा पानी भर रही है और खजूर के पेडो को सीच रही है। हजरत ने उसके पास आकर कहा, "बुड्ढी अम्मा, लाओ, मैं तुम्हारी डोलचिया खीच दू। तुम मुझे कुछ खाने को दे देना।' बुढिया ने कहा कि एक डोल का एक छुहारा दूगी और हजरत अली ने उसे स्वीकार कर लिया। उन्होने चालीस डोल पानी खीचा और चालीस छुहारे चादर के पल्ले मे बाधकर जब घर लौटे तो रास्ते मे मुहम्मद साहब उनसे मिल गए। पूछा, "कहा से आ रहे हो?" तब उन्होने सब हकीकत बयान की और कहा, "हुजूर, कचहरी से लौटकर घर जाकर जो देखा तो घर मे खाना पकाने का कुछ भी सामान नही था। मैंने यहा चालीस डोल खीचकर ये चालीस छुहारे पाए हैं। हुजूर भी इनमें से एक दो लेकर देखें और चखें।'

हजरत मुहम्मद की आखो मे आसू आ गए। उन्होंने अपने सुयोग्य दामाद को छाती से लगा लिया और कहा,"खुदा की कसम, इनमे से आधे मेरे और आधे तुम्हारे। मैं ऐसी नियामत को छोड नही सकता। तुम्हारी बीवी इस वक्त कुछ और बदोवस्त कर लेगी।"

सगठनकर्ता के त्याग का यह एक उदाहरण है। त्याग की ऐसी ही भावना जब जीवन पर कायम रहे, तभी मनुष्य दूसरो से बडा बन सकता है। दूसरो के स्वार्थों की रक्षा और अपने स्वार्थों के बलिदान की भावना जिस पुरुष मे होगी वही सगठन कर सकेगा, गुट बना सकेगा और अपनी पार्टी का लीडर बन सकेगा।

अपना स्वामी आप बनो

अपने से सम्बन्ध रखनेवाली प्रत्येक चीज के स्वामी आप बनो। अपनी समस्त इन्द्रियो सहित शरीर के, मन के, अपने घर-बार, इष्ट-मित्र, बन्धु परिवार के, तथा जहा तक तुम्हारा विस्तार होता जाए वहा तक उनके मालिक तुम बनते चले जाओ। जीवन की सबसे बडी कमजोरी यही है कि जिन वस्तुओ को लोग अपनाते है, उनका बोझा सिर पर ढोते चले जाते है। यह बोझा जीवन के शुरू से जीवन के अन्त तक बढता ही चला जाता है और मनुष्य अन्त मे उस बोझे से पिसकर चकनाचूर हो जाता है। यही जीवन के विफल होने का सबसे बडा कारण है। बोझा ढोना मनुष्य का काम नही गधे का काम है। मनुष्य प्राकृत रूप से भारवाहक नही। यदि मनुष्य को बोझ ढोना पडे तो फिर वह मनुष्य के करने योग्य कोई दूसरा काम नही कर सकता। उससे बचने का एक ही रास्ता है, वह यह कि जिस वस्तु को अपनाया जाए उसमे मालिकपन की सत्ता कायम कर दी जाए।

उदाहरण के लिए देखो, जन्म के साथ प्रकृति ने तुम्हे हाथ, पैर, आख, नाक, कान, हृदय और शरीर दिया, घर-बार दिया, परिवार दिया, स्त्री और पुत्र दिये, जमीन, जायदाद और अधिकार दिये, सगठन का नेतृत्व दिया। ज्यो-ज्यो तुम्हारी आयु बढती चली गई, तुम्हारे व्यक्तित्व और योग्यता के कारण तुम्हारे सम्बन्ध और सगठन भी बढते ही चले गए। परन्तु यदि

इन सम्बन्धो और सगठनो को ठीक तौर से अनुशासन मे रखने की योग्यता तुममे नही है और तुम इनमे सास्कृतिक विकास नही पैदा कर पाते हो तो फिर दूसरा कोई चारा नही। इन सबके बोझे को तुम्हे ढोना पडेगा। आख मचल जाएगी और कहेगी कि चाहे उचित हो चाहे अनुचित, चाहे पुण्य हो चाहे पाप, लेकिन मैं तो इस वस्तु को देखूगी, अवश्य देखूगी और तुम्हे इसके सामने नीचा देखना पडेगा। आख की जिद्द पूरी होगी। फिर कान कहेगा कि इस वाणी को मैं जरूर सुनूगा, इसमे कोई बाधा नही हो सकती। तुम विरोध करोगे किन्तु वह विरोध माना नही जाएगा और कानो की जिद पूरी हो जाएगी। इसी प्रकार रसना और दूसरी इन्द्रियो का हठ आपको पूरा करना पडेगा। क्या इस बात का खुलासा उदाहरण देने की आवश्यकता है कि इन्द्रियो का हठ पूरा करने के लिए वे लोग जो इन्द्रियो के दास हैं अपने जीवन को कितना पतित कर लेते है? इन्द्रियो की आज्ञाओ के अधीन होना इन्द्रियो के बोझे को सिर पर लादकर चलना ही है। जिस अभागे के सिर पर उसकी इन्द्रियो का बोझ लद जायेगा फिर वह दुनिया मे और किसी काम के योग्य नही रह सकता। इन्द्रियो के बाद मन है और मन के बाद आत्मा है। ये सब एक-से-एक अधिक शक्तिशाली वस्तुए हैं जो अपने ही मे है। इनका शासन अधिक निकट से अपने ऊपर चलता है। इनको अपने अनुशासन मे रखने की योग्यता यदि प्रारम्भ ही से तुम्हारे अन्दर न पैदा हुई तो फिर आगे चलकर इसकी कोई आशा नही हो सकती।

मैं यह नही कहता कि इन्द्रियो की इन वासनाओ को बलपूर्वक वश मे करना चाहिए। यह तो अत्यन्त भयानक बात

होगी और अस्वाभाविक भी। प्यासे आदमी को जब उसमे प्यास पैदा हो गई है रस्सियो से बाधकर नदी के किनारे डाल देना यह कोई अच्छा मार्ग नही है। प्यास के उत्पन्न होने पर तो पानी देना ही चाहिए। प्रत्येक इन्द्रिय अपने विषय मे तृप्ति प्राप्त करके ही शान्ति-लाभ कर सकती है। इन्द्रियो के विषय अपरिमित हैं। इन्द्रिया जड हैं, इनमे लिप्सा और वासना का उदय बिलकुल भौतिक उद्वेग है, और उस उद्वेग का शमन बडी ही आसानी से किया जा सकता है। जिन लोगो को इधर-उधर बाजार की चाट खाने की आदत पड जाती है, जिनकी जबान तेज-चरपरे मसाले और इसी प्रकार की चीजो को खाने की अभ्यस्त हो जाती है, उनको फिर सीधी-सादी रोटी और दाल नही रुचती। परन्तु जो इन वस्तुओ को कभी नही खाते वे यदि कभी भूल से भी ऐसी चीज खा लेगे तो उनकी जीभ मे छाले पड जाएगे। इन्द्रियो की जो अभिरुचि होती है वह अभ्यास से होती है।

यदि जीवन के प्रारम्भ मे, जबकि इन्द्रियो की सत्ता और वासना का विकास होता है, मनुष्य उनका दास बन जाता है तब फिर वे वासनाए इतनी प्रबल हो जाती हैं और उनका अभ्यास इतना मजबूत हो जाता है कि उस वासना और आकाक्षा को दबा लेना फिर आसान बात नही रह जाती। परन्तु प्रारम्भ के विकास मे ही यदि सयम और अनुशासन हृदय पर सीधी रेखा कायम कर लेता है तो इस प्रकार के भय का कोई अन्देशा नही। उदाहरण के लिए, तुम्हे मासाहार का शौक नही है और तुम उससे घृणा करते हो, फिर चाहे जितनी भी तीव्र भूख तुम्हे लगी होगी और चाहे जैसा भी स्वादिष्ट मास पका हुआ तैयार

होगा, उसके खाने की ओर तुम्हारी रुचि नही हो सकती। जब कि दूसरी ओर तुम्हे ऐसे उदाहरण मिलेंगे, कि जिसे मास खाने की आदत है, वह किसी भी कीमत पर विना मास खाए नही रह सकता। इसी प्रकार शराव और नशे की दूसरी चीजें—तम्वाकू, भाग, चरस, अफीम—मनुष्य को दासता की तरफ ले जाते हैं। इन वस्तुओ का शरीर पर जितना अधिक मोहक प्रभाव पडता है, उतनी ही अधिक मनुष्य की दासता मे वृद्धि होती है। भोजन तो निस्सन्देह शरीर की रक्षा के लिए एक वहुत जरूरी चीज है, उसी प्रकार जल और निद्रा भी।

मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि प्रत्येक इद्रिय जिन विपयो के लिए है, उन विपयो मे उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति होना अनिवार्य है। उन प्रवृत्तियो से उसको रोकना सयम नही है, वल्कि वेवकूफी है, आत्मघात है। प्रत्येक इद्रिय को अपनी सीमा मे तृप्त होकर उसके भोग भोगने दो। अपनी परिमित सीमा मे प्रत्येक इद्रिय भोग भोगकर जीवन को सफल करेगी, जीवन को सुख देगी, जीवन मे आशा और उत्साह का सचार करेगी। परतु देखना तो यह है कि जब इद्रिया अपने भोग का उपभोग करती है, तो हम उनके दास तो नही वन जाते, अपने-आपको उसमे भुला तो नही देते। यदि हम ऐसा करते है, तो यह महा भयानक है, और यही हमारी दासता है। इस दासता से तो शातिपूर्वक छुटकारा पाना ही चाहिए। इद्रियो के उपभोग यदि हमें आनद न देकर हमारे अन्दर एक मोह, एक विवशता उत्पन्न कर दें तो फिर हमे उसका वोझ लादना ही पडेगा। एक शरावी जव शराव पीना प्रारम्भ करता है, तव उसके दो कारण होते है। एक यह कि उसका मस्तिष्क अपने जीवन की चिन्ताओ का

ढोने मे असमर्थ होकर, एक प्रकार की बेचैनी अनुभव करता है और उसके मित्र या उसका ही मन उसे शराब पीकर उस बोझ की अनुभूति को तात्कालिक तौर पर भूल जाने का एक सुगम मार्ग सुझाता है। जब वह पहली बार मद्य पीता है, थोड़ी-सी मात्रा मे, तो उसके ज्ञान-तन्तु और चैतन्य की नाड़िया मूर्छित हो जाती हैं, और वह अपनी चिन्ता के बोझ को भूल जाता है। चिन्ता क उस बोझ को भूल जाने की ही कल्पना मे पडकर वह एक प्रकृत शराबी होने के रास्ते पर आगे बढता है, और अन्त मे उसका सर्वनाश होता है।

निस्सन्देह यह बडी भयानक बात है। इसी प्रकार व्यभिचार, चोरी, जालसाजी, दगा और झूठ—ये सब अपराध हैं, जिनकी उत्पत्ति मनुष्य की किसी इन्द्रिय की वासना मे शुरू होती है। और फिर वह केवल उस इन्द्रिय की ही वस्तु नही रह जाती, बल्कि उसका सारा व्यक्तित्व फिर ऐसा बोझ हो जाता है, जिसको वह वहन नही कर सकता। वह उसके भार से चकनाचूर होकर जीवन के मार्ग ही मे गिर पडता है और नष्ट हो जाता है। बेहोश होकर बोझ की अनुभूति को भूल जाना—बोझ से मुक्त होना नहीं है। यह तो उस कैदी के समान अवस्था है, जो जेलखाने की गदी और अधेरी कोठरी मे पडा हुआ, हथकडियो और बेडी मे जकडा हुआ, सो जाने के बाद एक सुख-स्वप्न देखता है, और उस स्वप्न मे राजभोग [illegible] करता है। मगर वह तो एक [illegible] है, स्व[illegible] भागने मे वह राजा नहीं ब[illegible] तरह [illegible] से मूच्छित होने के बे[illegible] सुख [illegible] वह सच्चा सुख नही ह[illegible] के [illegible]

उसकी कल्पना मे पडकर अपने-आप पर और बोझ नही लादना चाहिए।

मैं तुम्हे बताना चाहता हू कि व्यसनो का बोझ हृदय के बोझ से एक अलग वस्तु है। अकेली एक-एक इंद्रिय का बाझ ही यदि सीमा से बाहर चला जाए तो मनुष्य को नष्ट करने के लिए वही काफी है, यदि उसके ऊपर व्यसन का बोझ भी लद जाए तो फिर तो उसका नाश ही होगा। दुनिया मे करोडो-अरबो मनुष्य सदव इसी प्रकार नष्ट होते रहे हैं। केवल मनुष्य ही नही, केवल व्यक्ति ही नही, जातियो की जातिया इन व्यसनो के बोझ से चकनाचूर होकर ढह गईं। महाभारत के सग्राम मे क्या हुआ? लालसा की एक आग ने करोडो आदमियो के शौर्य और तेज को जलाकर खाक कर दिया। प्रभास-क्षेत्र मे यादवो के विनाश की जो करुण घटना घटी, वह तो इस पहाड जैसे बोझ का एक सबसे बडा उदाहरण है। मद्य पीकर उन्मत्त होकर कैसे मनुष्य नष्ट होता है? मद्य के उन्माद को अपने सिर पर लादकर पहले मनुष्य लडखडाता हुआ चलता है, और उसके बाद उसका पतन हो जाता है। यादवो का यह महापतन विचारने और समझने की वस्तु है। जिन यादवो के नेता श्रीकृष्ण जैसे धुरीण, बलदेव जैसे योद्धा और उद्धव जैसे नीति निपुण थे—उन यादवो का नाश ऐसी निकृष्ट रीति से क्यो हो गया? ससार मे एक यही उदाहरण नही और भी बहुत-से उदाहरण है। जातियो पर जब व्यसन का बोझ लद जाता है, फिर तो उनका नाश ही होता है।

मुगलो ही का उदाहरण देख लीजिए। स्वप्न जैसी बात है। कैसा उनका प्रताप था। कैसा उनका तेज था। कैसी तीखी

उनकी तलवार थी। कैसा अदम्य उनका दर्प था। उन्होंने अपने महलो की दीवारो पर घमण्ड से ये वाक्य खुदवाये थे कि 'अगर दुनिया मे स्वर्ग कही है तो यही है।' मुगल हिंद पर हुकूमत करना चाहते थे, हिंद के अधिपति बने रहना चाहते थे। वह हिन्द के अधिपति बन भी गए, परन्तु वे अपने अधिपति नही बने रह सके, अपने मालिक नही रह सके। उन्होने अपने-आपको व्यसनो और वासनाओ की दासता मे छोड दिया। जहा उन्हे इतिहास मे चिरस्थायी रहने वाले काम करने थे, वहा उन्होंने अपनी चिरसामर्थ्य और योग्यता को अपनी इन्द्रियो की लिप्सा मे खर्च कर दिया। उनके महलो मे रूप और यौवन का बाजार लगा रहता था। वहा वे रूप और यौवन खरीदते नही थे, बल्कि उस रूप और यौवन के हाथो स्वय को बेचते थे। उनके हरम मे जो मदिरा का समुद्र बहता था, उस समुद्र मे वे नहाते और प्यास नही बुझाते थे, उसमे डूबते थे, उस समय तक जब तक कि उनका विनाश न हो जाए। इस रूप, मदिरा, ऐश्वर्य, लालसा और वासना के प्रचण्ड थपेडो मे आकर प्रतापी मुगल साम्राज्य चूर-चूर हो गया। उसकी जडें हिल गईं। क्योकि यह उसपर ऐसा असह्य बोझा था, जिसको वह सहन नही कर सकता था।

जातियो के जीवन का यह सबसे बडा भेद है। चाहे व्यक्ति हो, चाहे समाज—उसे अपने-आपका मालिक बनना होगा, अपने-आपका अधिपति बनना होगा। उसका यह आधिपतित्व धीरे धीरे विस्तृत होगा फिर बढता ही चला जाएगा। इस अधिपति होने का प्रारम्भ अपने ही शरीर और अपनी ही इन्द्रियो से होता है। इसलिए मैं तुमसे यह कहना चाहता हू कि सबसे पहले अपने शरीर, अपनी इन्द्रियो और अपनी आत्मा के अधि-

पति बनो। इनपर अनुशासन करो। इनपर उदार भाव रखो। मैं यह नही कहना चाहता कि अपनी इन्द्रियो को कसकर बाध रखो, और उन्हे अपना दास बना लो। मैं तो दासता का उन्मूलन करना चाहता हू। जड-मूल से दासता का नाश करना चाहता हू। जिस प्रकार तुम्हारा इन्द्रियो का दास बनना तुम्हारे विनाश का कारण है, उसी प्रकार यदि तुम इन्द्रियो को कसकर बाध रखोगे और उन्हे दास बनाने की कोशिश करोगे तो वह जरूर तुम्हारे नाश का कारण होगा। जहा दासत्व है, वहा अधकार है। स्वतत्रता और प्रभुत्व—इन दोनो का समान सहयोग होना चाहिए। मैं कहता हू, इन्द्रियो और मन को उन्मुक्त करो। इनको अपने-अपने विपयो मे पूण आनन्द प्राप्त करने दो। परन्तु इनपर सस्कृति और अनुशासन की मर्यादा रखो। उस मर्यादा से इन्हे बाहर न होने दो। फिर तुम जीवन मे ऐसा आनन्द प्राप्त करोगे, जिसकी तुमने कभी कल्पना भी नही की होगी। जब तुम अपने शरीर और इन्द्रियो को इस प्रकार वश मे रखकर अपने-आपको तृप्ति और आनन्द मे विभोर कर लेते हो, तब फिर तुम्हारा कायक्षेत्र तुम्हारे शरीर से आगे बढ जाता है।

मैं यहा पर एक बात और बता देना चाहता हू—वह यह कि आनन्द और सुख मे क्या अन्तर है? तुम्हे भूख लगी और ठीक समय पर तुम्हे उत्तम भोजन मिल गया और तुमने तृप्त होकर भोजन कर लिया। उस भोजन से तुम्हे सुख की प्राप्ति हुई। तुम बिलकुल थककर चकनाचूर हो गए और तुम्हे तुरन्त ही पूण विश्राम के लिए सुखद और कोमल शय्या मिल गई, इससे तुम्हे अत्यन्त सुख प्राप्त हुआ। यही सुख इन्द्रियो की

अनुभूति है। ये सुख इन्द्रियो के स्पर्श से मिलते हैं। इनसे इन्द्रिया की प्यास बुझती है। परन्तु तुम जब उत्तम भोजन कर चुकने के बाद अपने आपको तृप्त अनुभव करते हो, तब यदि तुम्हारे सामने फिर अच्छा भोजन आता है तो उसके प्रति कोई आकाक्षा और अभिलापा तुम्हारे मन मे नही होती। सुखो और उपभोगो की आकाक्षा जब मन मे नष्ट हो जाती है, तब उस परिस्थिति को आनन्द के नाम से पुकारा जाता है।

अभिलपित वस्तु के प्राप्त हो जाने पर सुख और प्राप्त न होने पर दु ख होता है। अभिलापा पूरी हो जाने से आनन्द प्राप्त होता है। जीवन मे इस बात की चेष्टा होनी चाहिए कि हमारा जीवन केवल सुखी ही न हो, प्रत्युत आनन्दित हो। इसका मतलब यह है कि हम अपने जीवन को ऐसा बनाए कि केवल उसमे यही बात पैदा न हो कि हम जिस चीज को चाहे वही हमको मिल जाए। प्रत्युत प्राप्ति इस हद तक हो कि हमको किसी चीज की आकाक्षा ही न रह जाए। जब जीवन उस धरातल पर पहुच जाएगा, तब हमको सभी वस्तुओ की पर्याप्तता से तृप्ति होगी तथा किसी वस्तु की आकाक्षा न रहेगी, वही जीवन शुद्ध-बुद्ध-मुक्त होगा। उस जीवन पर कोई बोझा नही रहेगा। तब यह कहा जाएगा कि सच्चे रूप से तुम अपने-आपके स्वामी बन गए, अपने-आपके मालिक बन गए। याद रखो, जो कोई अपने-आपका मालिक है, वह सारे विश्व की सम्पदा का भी मालिक है। यह मत समझो कि ऐसा करने के लिए तुम्हे कोई योगी-यति बनने की आवश्यकता है, या राजा-महाराजा होने की जरूरत है। ऐसा कुछ नही है। चाहे जिस भी परिस्थिति मे, चाहे जिस भी स्थिति मे यह योग्यता प्राप्त की जा सकती है।

किन्तु मेरी अभिलाषा तो यह है कि यह योग्यता सारे समाज मे सारी मनुष्यजाति में होनी चाहिए, एक व्यक्ति मे ही नही। उससे कोई लाभ नही हो सकता। जिस समय समाज मे तृप्ति और आनन्द की धाराए बहने लगेंगी, समय-असमय वासनाए विचलित होकर मनुष्य को कमजोर और विचलित नही कर पाएगी, तभी मनुष्य अपने आपका मालिक बनेगा और तभी उसका प्राप्तव्य उसे मिलेगा।

महाराज जनक का नाम तुमने सुना होगा। वह जनक जो विदेह कहलाते थे, जिनकी चर्चा ब्राह्मण-ग्रन्थो और प्राचीन ब्रह्मवाद की पुस्तको मे है। कहा जाता है, महाराज जनक बडे भारी ब्रह्मवेत्ता थे और बडे-बडे ऋषि-मुनि उनके सामने ब्रह्म-सम्बन्धी उलझनें सुलझाने को आते रहते थे। विद्वान मण्डली मे वे विदेह जनक के नाम से प्रसिद्ध थे। एक बार मुनि अष्टावक्र उनके यहा आये। वह बडे अक्खड मिजाज के आदमी थे। आते ही राजा से प्रश्न कर बैठे कि तुम जो अपने को विदेह कहते हो यह तुम्हारा झूटा अभिमान है। अरे, तुम किस प्रकार के विदेह हो जब कि ठाटदार महलो मे रहते हो, सुदर स्त्रियो और दास-दासियो से सेवाए कराते हो, छप्पन प्रकार के उत्तम भोजन करते और षड्रस चखते हो, नरम और कोमल गुदगुदे गद्दो पर मौज करते हो, इशारे पर सेवा करने के लिए दास और दासी हाथ-बाधे खडे रहते हैं, दुनिया के राजा तुम्हारे नाम से कापते हैं, ससार की कोई वस्तु तुम्हारे लिए दुलभ नही है। इन तमाम भोगो और ऐश्वय के बीच मे रहते हुए, इन्हें भोगते हुए तुम विदेह होने का पाखण्ड किस प्रकार करते हो? विदेह तो हम हैं। हमने अपनी तमाम इन्द्रियो को वश मे कर लिया है, हम

महीनों और वर्षों वृक्ष के पत्ते खाकर अथवा केवल पवन भक्षण करके समाधिस्थ होकर ब्रह्म का चिन्तन करते हैं, सारी वासनाओ को हमने बलपूर्वक नष्ट कर डाला है और अपने शरीर को सुखाकर हमने लकडी के समान कर लिया है। हमने इतने कष्ट सहन किये है। विदेह तुम हो कि हम ?

सुनकर जनक हसे। उन्होने आदरपूर्वक ऋषि की अभ्यर्थना की और कहा, "महाराज, सब बातो का उत्तर उतावली मे नही दिया जा सकता। आप आइए, ठहरिए, कुछ दिन के लिए अपने इस सेवक का आतिथ्य स्वीकार कीजिए।"

ऋषि ठडे हुए और राजमहल मे ठहर गए। जनक महाराज ने उनकी सेवा-सुश्रूषा और आराम का बहुत अच्छा बदोबस्त कर दिया। वह बडे सुख और आनद से राजमहलो मे रहने लगे और इसी प्रकार कुछ दिन बीत गए। एकाएक एक दिन महाराज जनक ने अपने एक विश्वस्त अनुचर को आज्ञा दी कि किसी ऐसे दीन-दुखी मनुष्य को पकडकर ले आओ, जो अपने जीवन से बिल्कुल निराश हो, आत्मघात तक करने को तैयार हो, जिसका दुनिया मे कोई सहारा न हो, जो सब प्रकार से पतित, कलकित और अयोग्य हो। महाराज की आज्ञा का तुरत पालन किया गया और ऐसे ही एक पुरुष को पकडकर महाराज के सामने उपस्थित किया गया। महाराज ने आज्ञा दी, "इस पुरुष को आज से हमारे ही समान अधिकारसम्पन्न समझा जाए। जिस प्रकार हमारी आज्ञाओ का पालन किया जाता है, उसी प्रकार इस पुरुष की आज्ञाए पालन की जाए और जिस प्रकार का ऐश्वर्य और सुख भोग हमारे लिए उपस्थित है, वैसा ही इस पुरुष के लिए उपस्थित कर दिया जाए। जो कोई इस काम मे

अवहेलना करेगा उसको प्राणदड दिया जाएगा।" ये सारे खेल मुनि अष्टावक्र के सामने हुए और वे राजा की इस अद्भुत आज्ञा को सुनकर बडे आश्चर्यचकित हुए। उन्होने अपने मन मे कहा कि राजा लोग भी अजब सनकी हुआ करते हैं। जो उनके मन मे तरग आई, वही कर बैठते हैं। परन्तु उस व्यक्ति के प्रति मुनि अष्टावक्र का कौतूहल जरूर बढ गया। वे बडे ध्यान से उनकी दिनचर्या को देखने लगे। दर्जनो दास-दासिया और सेवक उनकी सेवा मे उपस्थित हो गए और एक बढिया सा महल, राजसी ठाट-बाट से सुसज्जित कर उसे रहने के लिए दे दिया गया। वह अपने उन दिनो को भूल गया जब एक निरीह भिखारी होकर एक एक टुकडे की भीख मागता था। अब वह राजा के समान सेवको पर हुक्म चलाता था। अनेक प्रकार के स्वादिष्ट भोजन करता था, उत्तम शय्या पर सोता था। उसकी प्रत्येक इच्छा और प्रत्येक आज्ञा का पालन किया जाता था। देखते-ही देखते उसका रग-ढग बदल गया। वह खूब मोटा-ताजा और सुखी हो गया। अष्टावक्र उसका यह परिवर्तन देखते और राजा की मूर्खता पर हसते थे।

इस प्रकार कुछ दिन व्यतीत हो गए। इस बीच मे मुनि अष्टावक्र ने राजा से कई बार अपने प्रश्न का उत्तर मागा और राजा ने उसे हसकर टाल दिया। एक दिन महाराजा ने अपने विश्वस्त सेवक से पूछा कि उस आदमी का क्या हाल है जो पकडकर लाया गया था। क्या हमारी समस्त आज्ञाओ का यथावत् पालन हो रहा है? अनुचर ने विनीत भाव से कहा कि महाराजा की आज्ञाओ का यथावत् पालन हो रहा है और वह आदमी बहुत सुखी और सन्तुष्ट है। राजा ने आज्ञा दी कि

अभी सारे शहर मे ढिंढोरा पिटवा दो कि कल सायकाल सूर्यास्त के समय उस पुरुष को राजमहल के प्रागण मे सूली पर चढा दिया जायगा। जो कोई इस दृश्य को देखना चाहे वह उस समय राजमहल मे एकत्रित होकर देख सकता है। राजा की इस विचित्र आज्ञा को सुनकर राजकर्मचारी आश्चर्यचकित हुए और जब मुनि अष्टावक्र ने सुना तो उन्होने कुटिल हास्य से कहा कि निस्सदेह राजा पागल है और भयानक भी है। ऐसे राजा के प्रमाद और क्रोध का क्या ठिकाना। इससे तो दूर रहना ही अच्छा। अब लीजिए इस बेचारे भिक्षुक की जान अकारण ही जाएगी। परन्तु राजाज्ञा का पालन कर दिया गया। ढोल पीटने वाला व्यक्ति जब राजमहल की खिडकी के नीचे खडा होकर राजाज्ञा सुनाकर ढोल पीटने लगा तो उस भाग्यहीन ने भी अपने भाग्य के इस फैसले को सुन लिया। इसके साथ ही वह बौखला उठा और उसने घबराकर कहा, "यह क्या बात है ? किसलिए मुझको सूली पर चढाया जा रहा है ? किसलिए मेरे साथ यह अनर्थ किया जा रहा है ? यह घोर अन्याय है। दुहाई महा-राज की, दुहाई सब लोगो की। मुझ गरीब को बेकसूर मारा जा रहा है, मेरी रक्षा होनी चाहिए। यह राज्यभोग, सुख और ऐश्वय मुझे नही चाहिए। मुझे भीख माग खाना मजूर है। मुझे छोड दो, मुझे चले जाने दो।" लेकिन उसकी यह सारी हाय-तोबा व्यर्थ थी उसपर कडा पहरा लगा दिया गया। परन्तु सब प्रकार का सुख और ऐश्वर्य का भोग करने मे तो उसको वैसी ही छूट थी। अनेक प्रकार के स्वादिष्ट भोजनो से भरे हुए थाल उसके सामने लाए गए, उसने पागल की तरह उन्हे उठाकर फेंक दिया। स्वच्छ और कोमल गद्दे उसे काटने लगे और उसने आपे से

बाहर होकर उन्हे फाड डाला। दास-दासिया जब उसकी सेवा और आज्ञा के लिए विनीत भाव से हाजिर हुए तो उसने उन सबको भगा दिया। उसकी दशा उस मछली की भाति थी जो जीती तवे पर तली जा रही थी। वह झटपटा रहा था, चीख और चिल्ला रहा था, रो रहा था, और दुहाई पर दुहाई दे रहा था। वह चाहता था कि उसे राजा के सामने उपस्थित किया जाय और वह राजा से पूछे कि उसका अपराध क्या है। राजा को उसकी हालत की सूचना दी गई और कहा गया कि उसने खाना, पीना, सोना सब त्याग रखा है और उसकी हालत बहुत ही खराब है। डर है कि कही वह जगले से कूदकर अपनी जान न दे दे।

मुनि अष्टावक्र ने राजा से कहा, "महाराज, यह आपका किस प्रकार का खेल है? इस निरपराध व्यक्ति को सूली पर चढा देना आपके लिए शोभनीय नही है।"

राजा ने मुनि से कहा, 'आप जाइए और उसको समझाइए और कहिए कि वह खाना-पीना खाए और आराम से सोए। सूली तो उसे कल सध्याकाल मे दी जाएगी। उसे अभी से इतनी बेचैनी क्यो है?"

परन्तु मुनि के वहा जाने और समझाने का कोई लाभ नही हुआ। अन्त मे राजा ने उसे अपने सामने ले आने की आज्ञा दी और उससे कहा कि जो कुछ कहना चाहता है, वह कहे। उसने हाथ जोडकर और सिर झुकाकर महाराज से कहा कि महाराज, मुझ निरपराध को क्यो मारा जा रहा है? मेरा अपराध क्या है, जो मुझे सूली दी जा रही है?

राजा ने कहा, "तुम्हारा कोई अपराध नही, तुम्हे सूली हम

अपनी इच्छा से दे रहे हैं।"

उसने कहा, "महाराज, यह अन्याय है। मैं तमाम राजसभा की दुहाई देता हू कि इस अन्याय से मुझे बचाया जाए।"

राजा ने कहा, "इसमे अन्याय क्या है ? जब तुमको भीख मागते हुए राजमहल मे बुलाकर समस्त राज-ऐश्वय सौंप दिया गया, तब तो तुमने नही पूछा था कि मैंने ऐसे कौन-से सत्कर्म किए है कि मुझे भिखारी मे राजा बनाया जाता है। तुम बडे मजे से मौज-बहार मे मग्न हो गए और अपने को राजा ही समझने लगे। तुम्हे स्वप्न मे भी यह ख्याल नही हुआ कि किस पुण्य के बदले में तुमको इतना ऐश्वर्य मिला। अब जब तुमको सूली दी जाने वाली है तो तुम इसका कारण पूछते हो। इसका कोई कारण नही है। मेरी इच्छा है कि मैं तुम्हे सुली देकर मार डालू। चले जाओ।तुम्हारीकोई बातनही सुनी जायेगी। कल सूर्यास्त के समय तुम्हे सूली पर चढा दिया जाएगा। परन्तु याद रखो कि आज का दिन, बीच की रात और कल का पूरा दिन तुम्हारे लिए है। इससे पहले तो तुम्हे मारा ही नही जा सकता। इस समय मे खूब आनन्द उपभोग करो, खूब मौज करो, खाओ-पीओ और दुनिया का सुख लूटो। कल सायकाल जब तुम मरोगे तब उस समय मर जाना।"

वह रोता और चिल्लाता हुआ फिर अपने महल को लौटा दिया गया। अब उसकी हालत बहुत खराब हो गई। वह जमीन पर औधे मुह गिर गया। और खाना, पीना, सोना, बैठना, गद्दे और पलग सब उसने त्याग दिए। राजा ने फिर मुनि अष्टावक्र से कहा कि महाराज, उस बदनसीब को आप समझाइए कि वह क्या अभी से इतना कष्ट पा रहा है, तो मुनि ने कहा, "महाराज,

यह आप कैसी बाते करते है ? अरे, जिस पुरुप के सिर पर मृत्यु मडरा रही है और जो कल मरने वाला है वह कैसे खाए-पीए और किसी सुख और ऐश्वर्य का भोग करे। उसको मैं क्या समझा सकता हू ?"

राजा ने कहा, "मुनि जी, उसकी मृत्यु तो कल आने वाली है, अभी तो नही आ रही।"

अष्टावक्र ने जवाब दिया, "जिस पुरप की मृत्यु ध्रुव है, वह कैसे सुख और ऐश्वय का भोग कर सकता है ?"

राजा ने हसकर कहा, "वैठ जाओ अष्टावक्र मुनि, मैं आपको आपके प्रश्न का उत्तर देता हू। जिस पुरुप की मृत्यु निश्चित है, वह पुरुप योग्यता से ही भोगो को उस प्रकार भोग सकता है जैसे मैं भोगता हू—जिसने यह जान लिया है कि मृत्यु ध्रुव है। उस भाग्यहीन को तो इतना भरोसा है कि उसकी मृत्यु मे अभी दो दिन की देर है। कि तु मुझे तो इतना भी पता नही कि किस क्षण मेरी मृत्यु आ जाए, परन्तु मैं प्रतिक्षण इसके लिए तैयार हू। फिर भी तुम देखते हो कि मैं कितना शान्त हू। यह धन सम्पदा राजमहल, ठाठ-बाट, ऐश्वय, दास-दासी, सेवक-चाकर, उत्तम से उत्तम भोजन, उत्तम से उत्त म वस्त्र ये सब सुविधाए मुझे उपलब्ध है। मैं इन सबका अधिपति हू, दास नही। ये सब मुझसे छूट जाए गे, इसका मुझे तनिक भी मोह नही, जैसा मोह उस भाग्यहीन को है। इसलिए उसे ज्यो ही पता लगा कि कल जब मैं मर जाऊगा, तो ये सारी वस्तुए मुझसे छूट जाएगी वह अशात हो गया। वह इन वस्तुओ का दास है। वह इन वस्तुओ का भूखा है। वह मृत्यु को सहन नही कर सकता। इन सबका बोझ उसके सिर पर लदा हुआ है। कि तु मैं ऐसा नही, मैं शा त और

निश्चित हू। मुनिवर, यही कारण है कि लोग मुझे विदेह कहते हैं। आपने अपना उदाहरण दिया कि आप वृक्ष के पत्ते खाकर अपनी तृप्ति करते हैं। आपने अपनी इन्द्रियो को कसकर बाध रखा है। क्या यही आपकी तपस्या है ? यही आपका विदेहत्व है ? आपने अपनी इन्द्रियो को कसकर क्या बाधा ? इसीलिए कि आप इनके स्वामी नही हैं। इनपर आपका शासन नही है, उनपर आपका अधिकार नही है। कही वह आपसे विद्रोह न कर जाए, कही आपको धोखा न दे जाए कही आपकी घात न कर जाए इस लिए आपने इन्हे बाधकर रख छोडा है। इन्हे इनके विषयो से वचित कर दिया है। आप जीते-जी मृतकवत्, हृदय होते हुए हृदयहीन, जीवित होते हुए भी जीवनहीन हैं। आपने इस जीवन मे अपने-आपको नष्ट कर दिया। अब आगे आपके लिए कौन-सा मार्ग हो सकता है ? मुझे इन्द्रियो को बाध रखने की कोई *आवश्यकता नही। वे सब मेरी पालतू हैं। अपने-अपने भोगो मे* रत है। वे अपनी मर्यादाओ मे सीमित हैं, वे उन्मुक्त हैं उसी प्रकार जैसा मैं उन्मुक्त हू। वे आनन्द-विदेही है, जिस प्रकार मैं आनन्द विदेही हू। मुनिवर, इसीलिए मैं विदेह कहाता हू। आप जाकर इसी तत्त्व को समझने की चेष्टा कीजिए।'

ऐसा विदेहत्व जब मानव-जाति मे उत्पन्न हो जाएगा तभी मानवता का चरम विकास होगा। अभी तो मनुष्य पशुओ की भाति रहते हैं। इसलिए इनको कब्जे मे रखने के लिए पशुओ की भाति जजीरो मे बाधकर रखना पडता है। समाज के ये बधन एक से-एक बढकर मजबूत है। जब तक इन बधनो से मनुष्य बधा रहेगा तब तक वह मनुष्य नही माना जा सकता, वह तो पशु ही रहेगा। जब सब बधन-मुक्त हो जाएगे, सस्कृति और

सभ्यता इनपर आधिपत्य जमाएगे तब प्रत्येक मनुष्य अपनी ही मर्यादा मे, अपने ही ज्ञान मे सीमित रहेगा। जो विद्रोही रहेगा, वह सच्चा मनुष्य नही होगा। मनुष्यता के उस सच्चे रूप को पाने के लिए मैं फिर कहता हू और फिर कहता हू और फिर कहता हू कि तुम अपने-आपके अधिपति बनो। अपने-आपके मालिक बनो। जब अपने-आपपर तुमको अधिकार प्राप्त हो जाएगा, तब फिर जो तुम्हारे निकट सम्बन्धी है, जो तुम्हारे भाई-बन्धु, कुटुम्ब-परिवार, इष्ट-मित्र, पास-पडौसी, नगर-निवासी और देशवासी अथवा विश्व भर के मनुष्य है, उन सब तक तुम्हारा सम्बन्ध व्यवस्थित हो जाएगा। वे सब भी शुद्ध-बुद्ध-मुक्त होगे। पर संस्कृति और सभ्यता उनको तुमसे सयुक्त रखेंगे। तुम उनके इसी प्रकार अधिपति होगे जिस प्रकार अपने शरीर के। और वे सब भी उसी प्रकार अपने अधिपति होंगे, जैसे तुम उनके। इस आधिपत्य मे दासता नही, गुलामी नही, स्वतन्त्रता है, उन्मुक्तता है। इस अनुशासन में बधननही है—संस्कृति है।

✓सत्य-धर्म को अपनाओ

नकद धर्म अर्थात् सत्य-धर्म को अपनाओ। नकद धम तुम्हारे जीवन का सहारा है। उधार धम अधेरे मे ले जाएगा। जैसे उधार करोबार करने वाला दिवालिया बन जाता है, उसी तरह उधारखाते के धम पर चलने वाला नष्ट हो जाता है। इस समय तुम्हारा धम उधारखाते का धम है। उधारखाते का मतलब समझते हो ? उधारखाने का मतलब यह है कि तुम धम आज करो, किन्तु उसका फल मरने के बाद स्वग मे तुमको मिले। तुम किसी भिखारी को रुपया, पैसा, कपडा दान दो, किसी पुण्य खाते के अन्दर कोई काम करो, इन तमाम दान-धर्म और पुण्य के काम का बदला दूसरे जन्म मे मिलेगा। इसीका नाम उधारखाता है। देना अब और लेना मर जाने के बाद दूसरे जन्म मे। क्या दुनिया मे यह गारण्टी करने वाला भी कोई पैदा हुआ है जो इस बात की जिम्मेदारी ले कि मरने के बाद निश्चयपूर्वक अमुक दान-पुण्य का अमुक ही बदला मिलेगा ? हिन्दू-दशन यह है कि मरने के बाद आदमी दूसरा जन्म धारण करता है। जो लोग अच्छे पुण्य-कर्म करने वाले हैं, वे स्वग मे जाते है। कुछ दिन स्वर्ग मे रहकर फिर अच्छे कुल मे जन्म लेते हैं। जो उनमे भी अधिक पुण्य करते है, उनको मुक्ति प्राप्त हो जाती है। यह मुक्ति, स्वग और पुनजन्म की सम्भावना एक ऐसा सिद्धान्त है, जिसकी सच्चाई का कोई भी प्रमाण आज तक दुनिया मे किसीने किसीको नही दिया। अन्धविश्वास की बात

पृथक् है, लेकिन व्यावहारिक धम इस बात को नही स्वीकार कर सकता। उधारखाते के इस धम ने समाज को रूढियो का गुलाम, अन्धविश्वासी और निस्तेज बना दिया है।

नकली और बनावटी धम—जिसमे पूरी मुलम्मेसाजी है—इतने फैल गए कि जिनकी गिनती नही की जा सकती। और यह तो सम्भव ही नही कि इस बात पर भी विचार किया जाय कि कौन सच है और कौन झूठ है। कोई कहता है कि शिवलिंग के ऊपर गगाजल और बेल पत्ते चढाने से धर्म होता है, कोई कहता है काली की मूर्ति के आगे बकरे काटने से धर्म होता है कोई कहता है, शराब पीकर उन्मत्त हो भैरवी चक्र मे कुत्सित कम करने से धर्म होता है, कोई व्रत, उपवास, जप, तप और इसी प्रकार के दूसरे पाखण्डपूण कार्यों को धर्म मानते है। प्राचीन काल मे यज्ञ एक बडे भारी धर्म-कर्म माने जाते थे। बडे-बडे राजा-महाराजा और सम्राट् इन यज्ञो के फेर मे पडकर हजारो प्राणियो का वध कराकर और सैकडो अधीश्वरो की स्वतन्त्रता का हनन करके लूट-मार और डाकेजनी करने के बाद करोडो की सम्पत्ति इकट्ठा करते थे। वह सबकी सब इन यज्ञ करानेवाले ब्राह्मण-पुरोहितो को भेंट मे दे दी जाती थी और यह समझा जाता था कि बडा भारी पुण्य और धर्म का काम कर लिया गया। इसी प्रकार अश्वमेध और राजसूय की विजय-यात्राए निरर्थक रक्तपात की द्योतक थी। उसमे शक्तिशाली राजा निबल राजाओ को अपना गुलाम बनाते थे। यह मानवीय स्वाधीनता का अपहरण था, गुलामो का खुला हुआ खेल था, राज-लिप्सा और अधिकार-मद का एक नगा नाच था। इन यज्ञो के कुत्सित रूप आगे कैसे-कैसे बने और किस प्रकार यह महायज्ञ

वीभत्स और भयानक बूचडखाने बन गए, जहा हजारो पशुओ का वध किया जाता रहा और खून की नदिया बहाई जाती रही—यह तो इतिहास के जानने वाले जानते है। इसी प्रकार और भी अनेक ऐसे अनुष्ठान—जिनमे कोई विवेचना, कोई युक्ति और कोई तक नही है, केवल अधविश्वास जिसका आधार है—धम माने जाते है।

यह स्वग और नरक की झूठी और कल्पित बातें एक ओर रख देनी चाहिए। मैं तो इसपर विचार करना चाहता हू कि मनुष्य की सबसे भारी योग्यता उसकी विचार शैली है। धम तो एक ऐसी गोलमाल खाते की चीज बन गई है, जिसमे मनुष्य को विचार करने की जरूरत नही पडती। दूसरे शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि धम की सच्ची परिभाषा वह है कि जिसमे अक्ल का दखल न हो। जिसमे देने का तो कोई अन्त नही, परन्तु लेने का कोई ठौर-ठिकाना नही। भविष्य की कोरी कल्पना के आधार पर भावुक और भोले-भाले मनुष्यो को ठगना इस धम का एक रूप है। इस उधारखाते के धर्म से मनुष्य केवल लुट सकता है, अपने दिमाग को गुलाम बना सकता है, अपनी आत्मा का हनन कर सकता है परन्तु उससे कोई लाभ नही उठा सकता। यद्यपि लोगो के दिमाग पर धार्मिक गुलामी हावी है, परन्तु वे किसी भी प्रकार का स्वाथ-त्याग धर्म के लिए करने को उद्यत नही हो सकते। आज धर्म का ऐसा स्वरूप बन गया है कि पहनते-पहनते कपडे फट गए तो विचार किया कि उसको किसी नगे को दे डालें और समझ लिया जाए कि यह धम है। खाते-खाते जूठे टुकडे बच रहे और ख्याल हुआ कि ये किसी भूखे को दे डाले जाए और इन टुकडो को दे डालना धमखाते मे लिख

डाला गया। किसी भिखारी को एक पैसा दे डालना, किसी प्यासे को पानी पिलाना, किसी अपाहिज राह चलते को थोड़ी सहायता पहुचा देना सब धर्मखाते की चीज रही और यह तमाम धर्म उधारखाते का रहा।

स्त्री और पुरुष, पत्नी और पति के सम्बन्ध केवल लौकिक हैं। इस जीवन और इस लोक से परे पति-पत्नी का कोई सम्बन्ध स्थिर नही रह सकता। एक स्त्री और पुरुष—जो इस ससार मे मिलकर एक हुए हैं, इनमे से किसी एक के अथवा दोनो के शरीर का नाश होने पर, वे फिर कभी कही स्वर्ग मे, नरक में, या मृत्युलोक मे, पाताल मे मिल पायेंगे—यह झूठी और निरर्थक गप्प है। यदि हम पुनर्जन्म के सिद्धात को भी मान लें और नरक-स्वर्ग और मुक्ति की कल्पना भी कर लें, तो हमको यह भी तो मानना पड़ेगा कि भिन्न भिन्न मनुष्य चाहे वे स्त्री हो चाहे पुरुष अपने-अपने कर्मों के अनुसार दूसरे जन्म मे भिन्न-भिन्न योनिया प्राप्त करते है। मान लीजिये, एक पुरुष मरने के बाद भेड़िया बना और उसकी स्त्री भेड बनी। अब किसी भी लोक मे इनकी मुलाकात हुई, तो बताइए कि इनकी कैसी ठनेगी। मनुष्य यदि शेर बन गया, सर्प बन गया या और कोई कीडा-मकोडा बन गया, और स्त्री एक हरिणी बन गई या बकरी बन गई या घोडी बन गई तो इन सबका मेल कैसे हो सकता है। फिर स्त्री की आत्मा मे भी स्त्रीत्व हो और पुरुष की आत्मा मे पुरुषत्व यह भी एक हास्यास्पद बात है। एक स्त्री मरने के बाद मे पुरुष प्राणी ही बनेगी, इसका भी क्या ठिकाना। फिर यह झूठ-मूठ की बातें कहना कि मरने के बाद यह स्त्री उस पुरुष की पत्नी और वह पुरुष उस स्त्री का पति बनेगा, और इस दूसरे

जीवन के पति-पत्नी के सम्बन्ध को कायम करने के लिए व्रत, उपवास और अनुष्ठान करना कोरा पाखण्ड और मूर्खता की बात है । इसे मनुष्य के मस्तिष्क से नष्ट कर देना चाहिए। आज एक पुरुष मर गया और बीस साल बाद उसकी पत्नी का देहान्त होता है । क्या इस लोक और परलोक मे ऐसा कोई ठिकाना है कि जहा वह पति इस पत्नी की प्रतीक्षा मे बैठा रहा होगा ! क्या कोई भी युक्ति और दलील इन थोथी और निरर्थक बातो का समर्थन कर सकती है ? इन वस्तुओ का समर्थन तो केवल रूढिवाद ही कर सकता है। या वह उधारखाता, जिसमे इन विश्वासो की सृष्टि की गई है ।

ये सब झूठी बातें हैं। अपने दिमाग को इन तमाम बातो से शुद्ध कर डालो। इस बात का विचार करो कि धर्म तो वह है जिसका नकद फल हाथो हाथ मिलता है। इस बात पर भी तो विचार करो कि बुराइया और पाप सरलतापूर्वक बढते हैं, भलाई और पुण्य नही । इसका कारण क्या है ? इसका कारण यही है कि बुराई और पाप नकद है, भलाई और पुण्य उधार हैं। भलाई और पुण्य भी नक्द हो जाए, तो वे हाथो-हाथ बढें और फिर पाप और बुराई की कोई गुजाइश बढने की न रह जाए। एक आदमी सिगरेट पीता है। जब वह दूसरे ऐसे आदमी के पास जाएगा जो सिगरेट नहीं पीता है, तो वह एक सिगरेट निकालकर पहले खुद सुलगाएगा और पीना शुरू करेगा और इसके बाद वह दूसरे आदमी को पेश करेगा। यदि उस समय वह इकार करेगा, तो दूसरे समय उसकी अभिलाषा होगी और तीसरे समय वह पीने लगेगा। एक चोर, उठाईगीर, जेबकट दूसरे मनुष्यो को इन तमाम बुराइयो की जो शिक्षा देना शुरू करता है, वह उन सबका

नकद लाभ तुरन्त उसे दिखा देता है और इसलिए बडे से बडा खतरा उठाकर इन बुराइयो को लोग सीख लेते है। भलाइयो मे तो कोई खतरा है नही। यदि भलाइयो मे भी लाभ और परिणाम नकद हो और तुरत मिलने लगें तो दुनिया मे निस्सन्देह भलाई ही भलाई फैल जाए, बुराई का नामोनिशान न हो।

झूठ बोलना पाप है यह गलत है वल्कि झूठ बोलना मनुष्य की शान के खिलाफ है, अपमाजनक है, यह कहना कही ज्यादा अच्छा होगा। खून करना पाप है यह कहना ठीक नही है, वल्कि खून करना मनुष्य के लिए शोभनीय नही है कहना ज्यादा अच्छा है। मनुष्य के मन मे अपनी मान-प्रतिष्ठा का जितना ख्याल है और उसे कायम रखने के लिए वह जितना त्याग कर सकता है, उतना और किसी वस्तु के लिए नही। बुराइयो मे फसना मान और प्रतिष्ठा के विपरीत यदि समझ लिया जाए तो इसमे कोई सन्देह नही कि मनुष्य बुराइयो से दूर रहे। किन्तु ऐसा न करके यदि उसको पाप और पुण्य के झझट मे डाल दिया जाएगा कि इसका फल परलोक मे मरने के बाद मिलेगा तो फिर तो मनुष्य का साहस बढ जाता है। दुनिया मे ऐसे बहुत से लोग है, जो उधार खाते को आमदनी का खाता समझते है। और जब तक उनको उधार मिलता चला जाता है, तब तक वे मौज से उसको लेते चले जाते हैं। इस पुण्यखाते वाले उधार के बहीखाते मे दुनिया की रकम को जमा करनेवालो का एक वडा भारी गुट बन गया है।

रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय का पोप स्वर्ग की हुडी देने के सिद्धात पर करोडो रुपयो की सम्पत्ति डकार जाता था। आज भारत मे बडे-बडे मठो मन्दिरो के पुजारी, महन्त और ब्राह्मण,

✓ बडे-बडे ऊचे श्लोक बोलकर सकल्प कराने वाले तथा दान लेकर उसका हजारो और लाखो गुना स्वग मे मिलने की कल्पनाए बधाने वाले बहुत देखने को मिलते हैं। इन सब झूठे और बेईमानो का रोजगार नष्ट कर दो। इनके फन्दे मे मत फसो और इनके जाल से अपने को दूर रखो। दृढता और हठपूवक इनका विरोध करो और इनके तमाम जाल और पोले खोल डालो। उन पुजारियो को नष्ट कर डालो, जो ईश्वर और मनुष्य के बीच मे दलाल बने हुए बैठे है और जिन्होने भाति-भाति की पत्थर की मूर्तियो को तथा अनेक प्रकार की अश्लील-बीभत्स और कुत्सित भावनाओ को पवित्र धार्मिक रूप देकर मनुष्यो को उल्लू बनाया है। इन तमाम धम-व्यवसायियो को, जो उधार खाते खोले बैठे है, दिवाला निकालने के लिए मजबूर कर दो।

नकद धर्म तो अपना कर्तव्य है। विचार और विवेक की बुद्धि से मनुष्य को यह सोच लेना चाहिए कि मुझे क्या करना है और क्या नही। फिर करने योग्य काय को करना और न करने योग्य को त्याग देना यही पुण्य और धम की बात है। यदि तुम दीन दुखियो की मदद करते हो, किसी रोगी की सुश्रूषा और चिकित्सा करते हो, किसी भूखे को अन्न और नगे को वस्त्र देते हो, किसी अपढ को विद्यादान देते हो, किसी असहाय को सहारा देते हो तो उसमे इस भावना को मत सम्मिलित होने दो कि मरने के बाद इसका कोई फल तुम्हे मिलेगा या तुम कोई बीज बो रहे हो, जिसका एक वृक्ष उगेगा और उसके फल तुम्हे खाने को मिलेंगे। यह सब कुछ नही। जो कुछ तुम करोगे, वह मनुष्य का मनुष्य के प्रति कतव्य है। यह एक-दूसरे के प्रति सेवा का भाव है। एक-दूसरे के प्रति मनुष्यो की यह सेवा की

भावनाए अमल मे लानी ही चाहिए। जो जिसके योग्य है, वह अपनी योग्यता से दूसरे मनुष्यो की सेवा करे। मैं यह कहना चाहता हू कि मनुष्य की विद्या, मनुष्य की बुद्धि, मनुष्य का धन, मनुष्य की शक्ति, मनुष्य की कोई भी चीज उनकी अपनी व्यक्तिगत नही है। वह सारे समाज की है। अपने उपयोग मे आ सकने से अधिक, वस्तु को समाज के उपयोग मे लाना चाहिए। दुनिया मे सबसे बडा भयानक काम तो सचय है। इस सचय की भावना ने मनुष्य को बडे-बडे पापो और अपराधो मे फासा हुआ है। यह सचय जब तक कायम रहेगा, तब तक मनुष्य का कभी उद्धार नही हो सकता। यह सचय तो एक वितृष्णा है, एक हविस है। इसका कही ओर-छोर नही है। लाखो, करोडो, अरबो रुपया, धन और सम्पत्ति, मकान और जायदाद मनुष्य सचय करता हुआ चला जाएगा, कभी उसके मन मे यह भावना पैदा नही होगी कि यह मेरे लिए बहुत काफी है।

महर्षि टालसटाय ने इस सचय की भावना के विपरीत एक बडी सुदर कहानी लिखी है। उनकी कहानी का सार यह है कि एक राजा ने यह घोषणा कराई कि कल सूर्योदय से सूर्यास्त तक जो मनुष्य दौड लगायेगा और जितनी जमीन दौडकर पार करेगा, उसे उतनी ही जमीन दे दी जायेगी। अनेक नवयुवक और साहसी पुरुषो ने तेज से तेज सवारिया लेकर उस दौड मे भाग लेने की तैयारिया की। एक तेजस्वी नवयुवक ने, जो इन सबसे अधिक उच्चाकाक्षी था, एक मजबूत और तेज घोडे पर सवार होकर ठीक सूर्योदय के समय अपनी विजय यात्रा प्रारम्भ की। सूर्य ऊपर चढता गया और वह युवक मजिल पर मजिल तै करता हुआ चला गया। मध्याह्न तक उसने पचासो मील की पृथ्वी

विजय कर ली । उसकी आखे विजय गव से मत्त थी । वह हर्ष से मतवाला हो रहा था । वह सोच रहा था कि आज मेरे भाग्यो दय का दिन है, आज मै इतनी पृथ्वी जीत लूगा कि कल मैं एक महाराजा बन जाऊगा । उस तमाम पृथ्वी का मैं भोग करुगा । उसने खाने और पीने की कोई परवाह नही की । धूप, भूख और प्यास की भी कोई परवाह नही की । गर्मी से उसका कण्ठ सूख गया और शरीर पसीने और धूल-गद से लथपथ हो गया । उसका और उसके घोडे का शरीर थकावट के मारे चूर-चूर हो गया, परन्तु उसने विश्राम करना उचित नही समझा । उसका एक ही दृष्टिकोण था कि अधिक से अधिक जमीन पार कर ली जाए और वह घोडे को एड मारता हुआ आगे बढता हुआ चला गया । कुछ मिनट बीतते थे और वह एक मील जमीन को दबा लेता था । प्रत्येक मील के पत्थर के पास आने पर उसके हृदय मे उत्साह और आशा का सचार होता था । सूर्यास्त होने का समय आ गया । धूप मे पीलापन आ गया परन्तु युवक की यात्रा समाप्त नही हुई । अब वह सैकडो मील मे भी अधिक पृथ्वी को विजय कर चुका था ।

परतु उसकी अभिलाषा यह थी कि अभी तो दिन है, अभी धूप है, अभी सूर्य डूबा नही है । अभी तो मैं दस-बीस मील धरती को और विजय कर सकता हू और वह बराबर चलता चला गया । अन्त मे घोडे की शक्ति समाप्त हो गई । घोडा गिर गया और उसने तडपकर दम तोड दिया । उस शानदार जानवर के मरने की भी उसने परवाह नही की । भूख, प्यास और थकान के मारे वह बेदम हो रहा था । कि तु उसने सोचा कि अभी तो सूर्य अस्त होने मे देर है, अभी मैं और कई मील जमीन जीत सकता

हू। वह पैदल ही आगे को बढा दौडता ही चला गया। झाडिया मे उलझकर उसके कपडे फट गए, उसके पैर लहू-लुहान हो गए। उसका कलेजा मुह को आने लगा परन्तु वह दौडा हुआ चला जा रहा था। पृथ्वी को जीतता हुआ, आगे कदम बढाता हुआ। वह सोच रहा था कि अहा, कल जो सूर्योदय होगा, तो दुनिया देखेगी कि मैंने कितनी पृथ्वी विजय की है। अन्त मे बेदम होकर वह गिर गया। उसने आख उठाकर देखा, अभी भी सूर्य अस्त नही हुआ है। उसने बल लगाकर घिसटना शुरू किया। उसने सोचा, अब भी समय है। यह समय बार-बार नही मिलेगा। मैं घिसटकर और थोडी पृथ्वी को जीत सकता हू। वह घिसटता ही चला गया। उसके घुटने, हाथ-पैर और सारा शरीर लोहू लुहान हो गया। वह क्षत-विक्षत हो गया। वह बार-बार सिर उठाकर सूय को देख रहा था अभी भी सूर्य को अस्त होने मे कुछ देर थी। उसने सोचा कि क्यो न और साहस करू। अभी तो सूय अस्त नही हुआ है। उसने अपने जीवन की अन्तिम होड लगा दी और जब सूर्य अस्त हो रहा था वह जमीन मे औंधे मुह निर्जीव पडा हुआ था। सूय अस्त होने के कुछ क्षण पहले उसके प्राण उस छिन्न-भिन्न और थकित शरीर से निकल चुके थे। राजा ने आकर उसे देखा। मनुष्य की लिप्सा और वासना पर उसने खेद प्रकट किया और घोषणा की कि जितनी जमीन पर इस आदमी का शरीर पडा हुआ है, उतनी जमीन का यह अधिकारी है। इस जमीन को खोदकर उसीमे इसको गाड दिया जाए। तब दुनिया ने देखा कि वह महत्त्वाकाक्षी युवक अपने तमाम जीवन को खर्च करने के बाद केवल साढे तीन हाथ जमीन का अधिकारी हो सका।

ऐसी महत्त्वाकाक्षा, ऐसी वासना, जिसका अन्त न हो मानव जीवन को कलक-रेखा है। इससे मनुष्य को दूर रहना चाहिए। सन्तोष और उद्योग ये दोनो दो वस्तुए नही है। दोनो का सामजस्य होना चाहिए। सन्तोष और उद्योग दोनो मिलकर मनुष्य का अभ्युदय करते है। सन्तोष और उद्योग इन दोनो का सामजस्य ही मनुष्य को नकद धम की शिक्षा देता है। हमारे लिए सोचने की वस्तु यह है कि हम जो कुछ भी अच्छे और बुरे कम करते है। उन सबका परिणाम शुभ है और वह शुभ भावना लोकहित ही है। लोकहित के लिए जो काम किया जाएगा वह नक्द धम है, जिस काम के करने से मानव जाति का भला हो, मानव जाति का कल्याण हो वही काम धम और नकद-धम है। वह काम असत्य बोलना हो, छल-कपट करना हो, हत्या भी करनी हो तो निसन्देह वह धर्म है। धम का कोई निश्चित रूप नही है। धम तो एक परिस्थिति है। युद्ध के मैदान मे सिपाही लाखो मनुष्यो का हनन करता है। क्या यह हत्या नही है? परन्तु लोग उसको वीरता के नाम से पुकारते है। एक चिकित्सक रोगी की कल्याण कामना के लिए उसके साथ झूठ बोलकर यह कह सकता है कि तुम मत घबराओ, तुम बहुत शीघ्र अच्छे हो जाओगे। उसका यह झूठ बोलना उस सत्य की अपेक्षा कही ज्यादा उपयुक्त और उचित है, कि उससे कह दिया जाए कि तुम निश्चय मरोगे, और तुम्हारे बचने की कोई आशा नही है। किसी भी काय मे स्वाथ की कुत्सित वासना न हो तो वह काय धम है।

स्मरण रखना चाहिए, दुनिया मे हरेक वस्तु का मूल्य है, और इसी प्रकार प्रत्येक काम का भी। उपयुक्त मूल्य प्राप्त होने

पर कोई काय और कोई वस्तु कुत्सित नही कहलाई जा सकती। धमशास्त्रो मे भिन भिन समयो मे कर्म और अकम की वडी-वडी अदभुत व्याख्याए की गई हैं। एक ही काम कभी कम और कभी कुकम हो सकता है, परिस्थितिवश इनका मूल्य होता है। गीता की कर्मयोग की व्याख्या भी इसी प्रकार की है। यदि पाण्डवो के उन कुत्सित कर्मों की व्याख्या की जाए, जो कृष्ण के सहयोग से उन्होने महाभारत के युद्ध मे किए थे, तो यह भेद समझ मे आ सकता है। गीता जो मानवता का सनमें [illegible] दशन तथा कम-अकम की सच्ची और सही व्याख्या का एक प्रामाणिक ग्रन्थ गिनी जाती है इन कर्मों को ही कर्मयोग कहती है। निस्सन्देह कम और अकर्म ये तो विचारने की [illegible] हैं ही परन्तु कोई उस समय तक अकम है, जिस समय [illegible] कि उसमे स्वाथ और क्षुद्र भावनाए भरी हुई है [illegible] वैसा भी पवित्र या पुण्य कहकर माना जाता हो। [illegible] कम कर डालने मे कोई हानि नही जिसे दुनिया [illegible] है, लेकिन जिसमे लोकहित की भावना, मनुष्य का [illegible] हुआ है। यदि मनुष्य मे सच्ची व्यवहार-बुद्धि का [illegible] और लोकहित की भावना से उसका हृदय [illegible] धम क्या है—यह बडी आसानी से समझ [illegible] दिमागी गुलामी से मनुष्य का उद्धार होगा।

धनी बनो

धनी बनो। धन दुनिया मे सबमे अधिक महत्त्वपूर्ण वस्तु है। धन तुम्हारा ऐसा जबर्दस्त मित्र है, जो तुम्हे कभी धोखा नही देगा और कभी तुम्हारे साथ विश्वासघात नही करेगा। जब दुनिया के सारे सम्बन्धी, इष्ट-मित्र तुम्हें त्याग देंगे, तुम अकेले रह जाओगे, विपत्तियो के बादल जब तुम्हारे चारो तरफ छाए हुए होंगे उस समय तुम्हारी रक्षा करने की शक्ति यदि किसी वस्तु मे होगी तो तुम्हारे धन मे होगी। बहुत दिनो से ससार के भिन्न मतो के प्रवर्तको ने धन की निन्दा की है और धनियो की भी। निस्सन्देह वे धनी नष्ट कर डालने के योग्य हैं जो समाज पर बोझ रूप है, जिन्हे निधन लोगो को लादकर चलना पडता है। परन्तु धनी होने का अभिप्राय पूजीपति होना नही है। दुनिया की दो वस्तुए तो नष्ट हो ही जानी चाहिए। एक पूजीवाद या साहूकारी दूसरे जमीदारी। जमीदारी और साहूकारी ये दोनो जरूर नष्ट हो जाएगी। कायम नही रह सकती। मैं जिस प्रकार के धनी बनने की बात कहना चाहता हू वह साहूकार और जमीदार इन दोनो से पृथक् है। मैं तुम्हे न तो ऐसे जमीदार बनने की सलाह देना चाहता हू जिनका काम गरीब किसानो को चूसना है और न मैं तुम्हें ऐसे साहूकार के ही रूप मे देखना चाहता हू कि तुम अपनी पूजी के बल पर गरीब मजदूरो को मक्खी और मच्छर की तरह से कुचलते रहो। मैं तो धन को ऐसा रूप देना चाहता हू जिसमे शक्ति और सामथ्य,

गति और सुरक्षा का भाव है। यह धन जो तुम्हारे पास होना चाहिए, ऐसा होना चाहिए जो हर तरह से तुम्हारा रक्षक हो। जिसके आधार पर तुम्हारी सारी योग्यताओ का विकास हो जाए। तुम दीन, दुखी और लाचार न रहो। मनुष्य के प्रति अपनी शुभकाक्षाओ को रोकने की विवशता तुमको न प्राप्त हो। तुम दुनिया मे ऊचे से ऊचे स्तर पर रह सको। अपने बच्चो और परिवार को रख सको। विज्ञान ने जो सौन्दर्य ससार को दिया है, वह सब तुम्हे प्राप्त हो।

मैं यह चाहता हू कि वे गाव उजड जाए और नष्ट कर डाले जाए, जिनमे ग दे, अधेरे और सील-भरे कच्चे घर हैं। वे गलिया बर्बाद कर दी जाए जिनमे कीचड और ग दगी बारहो महीने और तीसो दिन भरी रहती हैं। निरानन्दमय शून्य और मुर्दार ग्राम्य जीवन खोदकर फेंक दिया जाए—जहा वे जीवन मे विज्ञान की उपादेयता को ग्रहण करने का कोई अवसर नही। और इनके स्थान पर मनुष्य जहा भी रहे, चाहे वह नगर हो, चाहे गाव, चाहे छोटा कस्बा हो—वह सु दरता और स्वच्छता का एक आदश नमूना हो। उन्हे वे तमाम सुविधाए और विकास की सारी सत्ताए प्राप्त हो जाए जो दुनिया मे किसीको प्राप्त है। राजा या रक मे कोई अ तर न रह जाए। न तो पहले के समान अमीर दुनिया मे रहे और न कीडे-मकोडो के समान लाचार और दु खी। समाज मे समता आ जाए। एक शरीर-सम्पत्ति ही की बात ले लीजिए। अमीर लोग कदाचित् इसीके सम्बन्ध मे लाचार है कि वे उसे धन के बल पर नही खरीद सकते। गरीब लोग चूकि मोटा खाते हैं और परिश्रम करते है, इससे उनकी त दुरुस्ती और उनके शरीर सुन्दर बने रहते हैं। अमीर

कुछ मेहनत नही करते, हराम का खाते हैं थुल थुल और निकम्मे बने रहते है। जहा एक गरीब आदमी एक अमीर आदमी के सुंदर बगले को देखकर, मोटर को देखकर, बढ़िया रेशमी वस्त्रो को देखकर ललचा उठता है, उनके बढ़िया से बढ़िया खाने को देखकर, मेज, कुर्सी और फर्नीचर को देखकर ईर्ष्या करने लगता है, वहा बड़े से बड़ा अमीर उसके मजबूत भुजदण्ड, चौड़े सीने और गठे हुए शरीर को देखकर हाथ मलकर रह जाता है।

जिस प्रकार शरीर-सम्पत्ति सारे मनुष्यो मे समान रूप से वितरित है, और वह उन सबको प्राप्त है जो स्वास्थ्य के नियमो का पालन करते है, उसी प्रकार धन सम्पत्ति भी वितरित होनी चाहिए। शरीर सम्पत्ति प्राकृतिक है और धन सम्पत्ति कृत्रिम है। इसलिए धन-सम्पत्ति को सर्व साधारण मे वितरित करने का काम समाज का है। समाज ही इसके लिए जिम्मेदार है। और इन दरिद्र मनुष्यो को, जो अपनी दरिद्रता मे सतुष्ट हैं कभी भी सन्तुष्ट नही रहना चाहिए। उनको अवश्य ही दरिद्रता के जीवन से ऊचा उठना चाहिए। मेरे कहने का यह अभिप्राय नही कि दरिद्रता कोई लज्जा की वस्तु है। मैं तो पहले ही कह चुका हू कि यदि लज्जा की कोई वस्तु है तो धनी होना है, दरिद्र होना नही। मैं उस प्रकार का धनी होना, जो पूजीवाद और जमीदारी का एक अग है, पसन्द नही करता। मैं समाज को सामूहिक रूप से धनी देखना चाहता हू। सारे समाज को सामूहिक रूप से धनी होने की आवश्यकता है। जहा समाज सामूहिक रूप से धनी हुआ तो मनुष्य की बहुत सी तकलीफें दूर हो जाएगी। आज करोड़ो मनुष्यो को खाने-पीने-रहने के उपयुक्त साधन नही प्राप्त होते हैं। रोगी होने पर वे उपयुक्त दवा नही पा सकते हैं।

इनके बच्चे शिक्षा और स्वास्थ्य की सब सुविधाओं से रहित हैं। यह सब इसलिए कि वैयक्तिक रूप से वे धनहीन हैं।

यदि सामूहिक रूप से समाज सम्पन्न हो जाए, सामूहिक रूप से समाज के रहन सहन का धरातल ऊंचा हो जाए तो ये सब तकलीफें दूर हो सकती हैं और मनुष्य का समाज समृद्ध और सुखी हो सकता है। यहां पर एक धोखा हो सकता है। इसलिए मैं फिर से इस विषय को दोहरा देना चाहता हूं। जैसा कि लोगों का विचार है, समाज में धनवान के प्रति विद्वेष की भावनाएं बनी हुई हैं और दरिद्र के प्रति सहानुभूति के भाव हैं। यह दरिद्रता और धनसम्पन्नता वैयक्तिक है, जिसका विरोध करना चाहिए और वह अन्त तक होता रहेगा। सामूहिक धनी होने के लिए विरोध नहीं है। यदि मनुष्य जाति इतना अधिक कमाने लगे कि उसका रहन-सहन ऊंचे दर्जे का हो जाए तो उसमें न केवल सद्भावना और बंधुत्व का उदय होगा, प्रत्युत उसमें एक ऐसा विकास होगा कि जिसे मनुष्य जाति ने कभी भी अनुभव नहीं किया था। सोचिए तो यदि दुनिया के सारे झोंपड़े जला डाले जाएं और उनके स्थान पर बंगले बन जाएं, दुनिया की सारी कच्ची सड़कें नष्ट कर दी जाएं और उनकी जगह बढ़िया पक्की सीमेण्ट की सड़कें तैयार कर दी जाएं, प्रत्येक मनुष्य को चमचमाती हुई बिजली का प्रकाश और बिजली की गर्मी और बिजली की सेवाएं प्राप्त हो जाएं, वायरलेस समस्त संसार की सभ्यता से प्रत्येक मनुष्य को संयुक्त कर दे, प्रत्येक मनुष्य अपने व्यक्तिगत और सामाजिक स्वार्थों और मनुष्य के प्रति अपने कर्तव्य पर सोचने और समझने की योग्यता प्राप्त कर ले, वह उत्तम कोटि का भोजन पेट भर प्राप्त करे, वह अपने बच्चों के

विकास के लिए ऊची सुविधाए प्राप्त कर सके, वह स्वास्थ्य-रक्षा के समस्त नियमो की जानकारी तथा उन तमाम साधनो से सम्पन्न हो जाए तो फिर मनुष्य कितना सुखी हो और उसका जीवन कितना उन्नत हो। उसमे से ईर्ष्या-द्वेष की नीच भावनाए कितनी आसानी से दूर हो जाए।

लोग कहते हैं कि यह धन पाप की जड है। धनी लोग अक्सर पापी होते हैं। धन प्राप्त करके मनुष्य पाप की ओर दौडता है। मैं इस बात को नही स्वीकार कर सकता। क्या गरीब लोग पाप नही करते? आप अपराध की सूची उठाकर देखिए। उसमे प्राकृत पेशेवर अपराधी, खूनी, लम्पट, शराबी और दूसरे कुकर्म करनेवालो की अधिकाश सख्या दरिद्रो की है। उन दरिद्रो की, जिनको हाड तोडकर परिश्रम करना पडता है। जिनके जीवन दुख और वेदनाओ से परिपूर्ण है, जिनमे आत्म सम्मान की भावना शताब्दियो से नष्ट हो गई है, जिनकी सस्कृति मर चुकी है और जिनकी अमूल्य भावनाए समाप्त हो चुकी है वे ही लोग दुनिया मे अपराधी और गुनहगार हैं। वे साहसपूर्वक फासी तक पाने का जुर्म कर बैठते हैं, धनी पुरुष नही। अलबत्ता धनी पुरुषो मे, जो चरित्र से गिर गए हैं, जिनका धरातल नीचा है या जो हर प्रकार के व्यसन मे फसे हुए हैं उनकी बात पृथक् है। उसके लिए धन जिम्मेदार नही है। हा, धन इस सबके पीछे साधन हो सकता है। परन्तु ऐसे भी उदाहरण हैं कि धन से बडे बडे काम किए जा सकते हैं। प्रजातन्त्रीय सरकार के उदाहरण को लो। ये सरकारें बडी बडी धन-राशियो का उपयोग मानवीय कल्याण के लिए प्रयोग मे लाती हैं, इनका एक ही सिद्धान्त है कि सामूहिक धन से सामूहिक जीवन का विकास

किया जाए। इन देशो मे ऐसे भी पुरुष हैं जो व्यक्तिगत रूप से असाधारण धनी है और वे उदारतापूर्वक अपने उस धन को सामूहिक और सार्वजनिक सेवाओ के लिए दान कर देते हैं। जब कभी ऐसा समय आएगा कि धन का सामूहिक विकास होगा और यह धन मनुष्य को सम्पन्न, सुखी और तृप्त बनाएगा तो वह साहूकारी और जमीदारी के रूप मे नही रहेगा, बल्कि वह सार्वजनिक जीवन के साधन का रूप बन जाएगा। तब धन का सच्चा उपयोग होगा और वह मनुष्य के लिए कल्याण का साधन होगा।

(५५) काम में लगे रहो

काम मे लगे रहो। काम मे लगे रहना जीवन का सबसे बडा भारी गुण है। सफलता और जीवन का महत्त्व इसी पर निभर है। जो काम में लगे रहते हैं वे सब प्रकार के विकार से मुक्त रहते है। जीवन की सबसे बडी शत्रु दुश्चिन्ता है। जो लोग काम मे लगे रहते हैं, चिन्ता उनके पास नही फटकती, चिन्ता उन्हीके पास घूमती रहती है, जो निकम्मा और आलसी जीवन बिताते है। लोग कहते है कि काम अधिक करने से थकन पैदा होगी। मैं कहता हू कि अधिक काम करने से शक्ति पैदा होती है। थकान चिन्ता से पैदा होती है। जो लोग काम करते रहते हैं वे अन्त तक सशक्त बने रहते है और चिरकाल तक वृद्ध नही होते। काहिल और आलसी पुरुष बहुत जल्दी बूढे हो जाते हैं। रोगी होने पर तथा शरीर और मन के विकार-ग्रस्त होने पर भी काम तो किया ही जाना चाहिए, चाहे वह काम कितना ही हल्का क्यो न हो। इससे विकार और वेदना कम अनुभव होगी और जल्दी ही उनका नाश हो जाएगा। शिथिल और निकम्मे पडे रहना स्वय एक विकार है। इससे अपना जीवन, शरीर और समय सब कुछ नष्ट होता है। कुछ लोगों का यह कहना है कि काम करने का उद्देश्य पेट भरना ही है। यदि हम बिना ही काम लिए पेट भर सकते हैं तो काम क्यो करें? जिन लोगो के नौकर-चाकर लगे हुए हैं, जिनकी जमीन-जायदाद और जमीदारिया हैं, जिनके किराये और ब्याज की आमदनी

है, जो पेंशन पाते हैं या और इसी प्रकार के साधन जिन लोगो की आमदनी के है, ऐसे लोग प्राय निकम्मे पडे रहते है। वे पडे-पडे हराम के टुकडे तोडते हैं और मेहनत नही करते। जब यह निकम्मापन मनुष्य मे बढ जाता है, तब फिर उन्हे लुच्चापन और बदमाशी सूझती है। वे शराबी, व्यभिचारी और दुर्व्यसनी बन जाते हैं और अनेक प्रकार से उस धन और शक्ति को जो आवश्यकता से अधिक है, बुरी तरह नष्ट करते है। यह मानवीय जीवन का बडा भारी दुरुपयोग है।

शीघ्र ही वह दिन आनेवाला है जब मनुष्य-समाज ऐसे कायर और आलसी स्त्री और पुरुषो को समाज मे जिन्दा नही रहने देगा। सूद और कर्ज की आमदनी खानेवाले, जमीन जायदाद और रियासतो की आमदनी पर निर्भर रहने वाले निकम्मे लोग दुनिया मे जिन्दा नही रहने दिए जाएगे। नौकर, मजदूर, कारीगर और किसान जो आज इतने दरिद्र और अपने मानवीय अधिकारो के ज्ञान से रहित है और जो आसानी से दूसरो की चाकरी बजाकर बदले मे केवल रूखा सूखा टुकडा प्राप्त करने मे ही सन्तुष्ट रहते है, हमेशा ऐसे नही रहेगे। उनमे एक ऐसी उत्क्रान्ति होगी और उनके जीवन मे ऐसा परिवर्तन होगा कि वे अपने मानवता के अधिकारो और मानव जीवन को पूर्ण करेंगे तथा इन पतित और अयोग्य व्यक्तियो को, जो समाज पर भार रूप है, निर्दयतापूर्वक नष्ट कर देंगे। कोई राजा नही रह सकेगा, कोई अमीर नही रह सकेगा, कोई मालिक नही रह सकेगा, कोई जमीदार नही रह सकेगा, कोई ब्याज और किराये की आमदनी खाने वाला नही रह सकेगा। प्रत्येक मनुष्य को काम करना पडेगा और वह काम ऐसा होगा जैसी जिसकी

योग्यता होगी। चिकित्सक चिकित्सा करेंगे, किसान खेती करेंगे, कारीगर कारीगरी के काम करेंगे। सभी अपने-अपने कर्त्तव्य का काम करेंगे और जीवन के निर्वाह के लिए जिन आवश्यक वस्तुओ की जरूरत है उन सबको प्राप्त करेंगे। उस नये युग में सुख का साधन प्राप्त करने के लिए मनुष्य को चाहिए कि अभी से काम करना सीख लें। आलसीपन मे पडे-पडे दिन व्यतीत करने की आदत छोड दें और उन सब व्यक्तियो पर घृणा की दृष्टि डालें जो इस प्रकार के आलस्य के दिन व्यतीत करते हैं।

आलस्य मनुष्य का प्रबल शत्रु है। धनी और अमीर ही नही, गरीब लोग भी इस आलस्य के पजे से नही छूटे ह। तमाम भारत मे २६ करोड किसान है, वे साल मे सिफ चार महीने कडी मेहनत करते है। उनकी यह कडी मेहनत साधारण नही है। उनकी इस कडी मेहनत का मूल्य ६० अरब रुपया है। परतु वे अपने जीवन के बाकी आठ महीने आलस्य मे, बिना ही किसी काम के खो देते है। वे चौपालो मे पडे पडे सोया करते है, या हुक्का गुडगुडाया करते ह, या गप्पे उडाया करते है या मुकद्दमे-बाजी या दूसरे बेहूदे कामो मे लगे रहते है। यदि वे अपने इस तमाम समय को ठीक तौर से काम मे लें, वे बराबर उद्योग और धधो मे लगे रहे, तो उनके इन आठ मास के उपयोग से उनके देश को बहुत कुछ मिल सकता है और एक सौ बीस अरब रुपयो की प्राप्ति इनके परिश्रम का मूल्य इन्ट हो सकती है। आप जान सकते है कि इतनी अधिक वार्षिक रकम यदि इन किसानो के उद्धार मे खच की जाए, तो इनके जीवन का स्तर कितना ऊचा उठ सकता है? उनके घर, उनके गाव, उनकी शिक्षा, रहन-

सहन कितने ऊचे उठ सकते है। आज वे महारौरव नरक मे पडे हुए हैं। बिल मे पडे हुए कोडे की भाति अपना सारा जीवन व्यतीत करते हैं। यदि वे इस निकम्मेपन को त्याग दें तो आनद-लोक के अधिपति बनकर इस जीवन के सबसे बडे साधन और सुखो को प्राप्त कर सकते है। दूसरे देशो के गरीबो और अमीरो मे भी कम और ज्यादा ऐसी ही बात है। दूसरे देशो के अमीर तो भारत के अमीरो की भाति निकम्मे और हराम के माल उडाने वाले होते हैं, परन्तु कारीगरो और मजदूरो की हालत वहा कुछ दूसरी है। वे लोग कार्यदक्ष और फुर्तीले हैं। उनके जीवन का धरातल भी थोडा अच्छा है। वे ज्यादा रुपया कमा सकते हैं। काम करने की उनमे अधिक शक्ति है। उनका रहन-सहन का तरीका जरा सुधरा हुआ है परन्तु वे भारत के गरीब किसानो और मजदूरो की अपेक्षा बहुत अधिक नैतिक रूप मे पतित है। सारे यूरोप और एशिया की जातियो मे दुर्व्यसन और अपराध भारत के कारीगरो, किसानो और मजदूरो की अपेक्षा बहुत अधिक है।

शिक्षित स्त्रियो मे काम न करने का मर्ज बहुत अधिक फैल गया है। यदि वे कुछ काम करती हैं तो वह काम की गिनती मे नही है। वह तो सिर्फ उनका शौक है। उसको काम नही कहा जा सकता। काम करना वास्तव मे वे अपने लिए घृणास्पद और अपमानजनक समझती है। उनका अधिक समय शृ गार और विलास मे खर्च होता है, शेष उपन्यास और इसी प्रकार का हलका साहित्य पढने मे। शृ गार और विलास के प्रति मुझे द्वेष नहीं है। असस्कृत रूप से रहना, भद्दे तरीके से रहना मैं इसका पक्षपाती नही। जरूर ही शृ गार जीवन का आवश्यक

अग है। परन्तु शृ गार मे, अध्ययन मे सुरुचि की और विकास की आवश्यकता है। पुराने लोगो का कहना है कि वेश उज्ज्वल हो परन्तु चमकदार नही, सूफियाना हो लेकिन शोख नही। पाश्चात्य सस्कृति मे स्त्रिया अपना जीवन अधिकतर ऐसे ही कामो मे नष्ट करती है, खासकर ऊचे दर्जे की स्त्रिया। इनका दिन-भर का समय मुलाकातियो से मिलने या दावतो मे जाने, अपनी ठसक-ठाठ दिखलाने और दूसरो की ठसक और ठाठ की आलोचना करने मे खच होता है, बल्कि कहना चाहिए, तमाम जीवन उनका इन्ही कामो मे खर्च होता है। जैसे पढे लिखे ऊचे दर्जे के रईस लोग अपना सारा समय घुडदौड मे खोते हैं, ब्रिज और शतरज खेलने और इसी किस्म के वेहूदा-निरथक काम करने मे नष्ट करते है, उसी भाति इनकी स्त्रिया भी करती हैं।

यदि वे काम करने के महत्त्व को समझ लें तो असस्कृत और छोटे दर्जे के लोगो की अपेक्षा इनके कामो की कीमत बहुत ज्यादा हो जाए। कुछ औरतें कसीदा काढती है, बुनाई का काम करती है। इन्हे मैं काम न कहकर केवल शौक कह सकता हू। एक स्त्री यदि आठ दिन आखें फोडकर एक छोटा सा फूल एक रूमाल के कोने मे काढ सकती है, तो कल्पना कीजिए कि इसने अपना कितना समय नष्ट कर दिया? और कला की दृष्टि से उस एक फूल की कीमत कितनी है? क्या कला की दृष्टि से वे स्त्रिया जिन्हें इस बात का घमड है कि मानवता की कला इस वक्त उनके हाथो मे है उची उठी हुई हैं? यदि वे अपने इन कार्यों मे कला का सच्चा वातावरण उत्पन्न नही करती तो वे अपने समय को नष्ट करती हैं। चाहे स्त्री हो चाहे

पुरुष, इस प्रकार अपने समय को नष्ट करना एक भारी अपराध है। आज समाज और राज्य-व्यवस्था इसको अपराध नही मानती। लेकिन यह दिन आ रहा है कि खाली बैठे रहना और समय को नष्ट करना एक भारी अपराध माना जाएगा और इसकी सजा मृत्यु-दड से कम नही होगी। मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हू कि जो लोग अपने समय को नष्ट करते है, काम नही करते, वे मनुष्य समाज पर भार रूप है और उन्हे नि सकोच भाव से मृत्यु का दड मिलना चाहिए। फिर वे चाहे राजा हो, महाराजा हो, नवाब, रईस, जमीदार या और कोई भी कुछ क्यो न हो।

काम का यह महत्त्व जीवन-निर्वाह का प्रश्न नही, जीवन निर्वाह के लिए काम नही होना चाहिए। काम तो कत्तव्य-पालन का एक अग है। जीवन का उत्तरदायित्व इसीपर है। काम न करके कोई मनुष्य क्यो जीवित रहता है। इसका जवाब देने का भार उसके ऊपर है। जिस आदमी के हाथ, पैर, आख, नाक, कान, सब इन्द्रिया और शरीर भी शक्तिसम्पन्न हो वह काम क्यो न करें? काम न करने के क्या माने? यदि वह इन सबके रहते हुए भी काम नही करता तो नि सन्देह उसको प्राण-दण्ड दे देना चाहिए। वह समाज का एक बडा भयकर अपराधी है, उसने अपनी शक्तियो का दुरुपयोग किया है। अभी आज तो तुम यह समझते हो कि तुम्हारा धन और दौलत, तुम्हारा व्यक्तित्व, तुम्हारा शरीर, सब तुम्हारे है। तुम इनका चाहे जितना दुरुपयोग करो, कोई तुम्हे रोकने-टोकने वाला नहीं है। परन्तु समाज जब जाग्रत् हो जाएगा तब तुम यह धाधलेबाजी

नही चला सकोगे। तुम अपनी किसी भी चीज पर अधिकार नही रख सकोगे।

तुम्हारे सारे अधिकार नष्ट कर दिए जाएगे। तुम अधि कार के आधार पर किसी वस्तु को नही भोग सकोगे। तुम्ह कत्तव्य की राह पर चलना होगा। कतव्य के अनुशासन मे रहना होगा। तुम्हे अपना सर्वस्व कतव्य के नाम पर बलिदान कर देना होगा। तुम बिना किमी प्रतिफल की कामना के काम किये चले जाओगे और काम करने को अपने जीवन का एक बहुमूल्य माध्यम समझोगे। जैसा कि श्रीकृष्ण ने गीता मे कहा है, "कमण्येवाऽधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।" काम करना तुम्हारा कतव्य होगा, फल की इच्छा करना नही। तुम्हारा काम तुम्हे फल देगा और वह फल केवल तुम्ही तक सीमित नही होगा। वह तुम्हारे मानव समाज तक होगा। मानव समाज को तुम्हारे सवस्व अपहरण करने का पूण अधिकार है। तम्हारी प्रत्येक वस्तु मानव समाज की है। तुम मानव समाज के एक अग हो, मानव-रूप मशीन का एक पुर्जा हो। यह मानव की मशीन मुकम्मिल है, टूटी-फूटी नही है, चलती हुई है और यदि वह मशीन चालू रहगी, तब उसका कोई भी ऐसा पुर्जा नही हो सकता जो निरथक और चुप पडा रहे। छोट से छोटे और प्रत्येक पुर्जे को गतिशील होना पडेगा, अपने स्थान पर अपनी उप-योगिता साबित करनी पडेगी। जो पुर्जा निकम्मा होगा उसे हटा दिया जाएगा, नष्ट कर दिया जाएगा और उसके स्थान पर दूसरा गतिशील पुर्जा स्थापित कर दिया जाएगा। यह प्रगति का अबाध नियम है। इस नियम से किसी भी प्रकार तुम्हारा उद्धार नही हो सकता है। इसलिए समय से पहले चेत जाना

चाहिए और अपने-आपको और अपने जीवन को उस निकम्मे पुर्जे की भाति नही बनाए रखना चाहिए जो मशीन की प्रगति का बाधक और मशीन को निकम्मा करने वाला है।

एक मशीन चाहे जितनी भी भारी हो और चाहे हजारो आदमियो की सलतता उसपर निभर हो यदि उसका एक जरा-सा पुर्जा भी दोषपूण और गतिहीन हो गया तो सारी मशीन को गतिहीन बनाने का कारण रूप जो पुर्जा है और जिसके ऊपर सारी मशीन की प्रगति को रोक देने का आरोप है, वह एक बहुत भारी वस्तु है। प्रगति के शत्रु, प्रगति के बाधक मनुष्य किसी भी पुर्जे के रूप मे मानव मशीन के पुर्जे नही बने रह सकते। स्त्री और पुरुष, चाहे करोडो हो, बिना काम के निकम्मे पडे रहकर अपनेको नष्ट कर सकते हैं, परन्तु जिस दिन सामूहिक रूप से मशीन की गति जारी होगी, मशीन चलेगी इन प्रगति-हीन पुर्जो का नाश अवश्यम्भावी है, इनको नष्ट कर दिया जाएगा।

अनुशासन मे रहो

अब अनुशासन और संस्कृति के विषय मे भी कुछ बातें जान लेनी चाहिए। अनुशासन क्या वस्तु है? अनुशासन वह वस्तु है जिसके आधार पर सामाजिकता का निर्माण हुआ करता है। अनुशासन का अर्थ क्रमबद्ध होना, श्रेणीबद्ध होना, सामूहिक एकता प्राप्त कर लेना है। मनुष्य सामूहिक जीव है, वह अकेला नहीं रह सकता। समाज मे मिलकर रहना उसके लिए अनिवार्य है। समाज मे सगठित होना उसके लिए बहुत जरूरी है इसलिए वह जो कुछ चाहता है वह बनकर नही रह सकता। मनुष्य को अपना रहन-सहन, आचार-विचार, कपडे लत्ते, ठाठ-बाट, बातचीत इन सबमे अनुशासन की आवश्यकता पडती है। क्या यह सम्भव है कि आप बिलकुल नगे होकर बाजार मे निकल जाए? इसमे कोई सन्देह नही कि नगे होकर बाजार मे फिरना कोई अपराध नही, कोई पाप नही। जैसे एक छोटा-सा बच्चा सारी दुनिया के सामने नगा रह सकता है, उसी प्रकार अधिक उम्र का पुरुष अथवा स्त्री भी बिलकुल नग्न भाव से समाज मे घूम-फिर सकते हैं। इसमे कोई भी अपराध और पाप नही है। परन्तु ऐसा करने मे सामाजिक अनुशासन का उल्लघन है। सामाजिक अनुशासन का उल्लघन नही किया जा सकता। सामाजिक अनुशासन की मर्यादा की रक्षा के लिए तुम्हे वस्त्र पहनना होगा। इन वस्त्रो मे भी एक क्रम होगा। वह वस्त्र आप मनमाने नही पहन सकते। वह भी समाज की मर्यादा और

अनुशासन के अनुकूल होगा। इस सामाजिक अनुशासन के आधार पर सामूहिक और सर्वहितकारी कार्यों मे तुम्हे परतन्त्र रहना चाहिए। इसमे तुम मनमानी नही कर सकते। मनमानी करने के लिए कोई दलील भी उपस्थित नही कर सकते।

जैसे समाज मे नगा फिरने मे कोई अपराध और पाप नही है उसी प्रकार और भी बहुत सी बातें हो सकती है, जिनके विषय मे तुम कह सकते हो कि यह कोई अपराध और पाप नही है परन्तु वे सब केवल इसलिए नही किए जाने चाहिए कि इनमे सामाजिक अनुशासन की मर्यादा भग होती है। अनुशासन के आधार पर ही समाज का सगठन होता है। कल्पना करो कि तुमने एक सभा का सगठन किया। सभा मे प्रत्येक आदमी को एक ही मर्यादा मे बैठना अनिवार्य है। अब यदि कोई आदमी एक चारपाई ले आया और उसपर डटकर बैठ गया, दूसरा एक आदमी कुर्सी पर पसर गया, तीसरा बीच मे खडा हो गया, चौथा एक ऊचा सा स्टूल लेकर उसपर बैठ गया, तब क्या इस प्रकार सभा का अनुशासन रह सकता है? व्यवस्था कायम रह सकती है? सभा का अनुशासन रखने के लिए चाहे अमीर हो चाहे गरीब, चाहे छोटे हो या बडे, सबको एक समान ही एक ही आसन पर बैठना चाहिए। यही सभा की मर्यादा या अनुशासन है। इसी तरह समाज मे सब मनमानी करने लगें तो समाज का कोई कार्य निभ नही सकता। यह आवश्यक नही है कि समाज मे सब लोग बराबर हो। समाज के लोगो मे तो विषमता होती ही है—लोग अमीर हैं, गरीब हैं, मूर्ख हैं, विद्वान हैं, कमजोर हैं, ताकतवर है, छोटे हैं, बडे हैं, ऊचे है, नीचे हैं। परन्तु यदि ये सब अनुशासन मे रहेंगे, तो इनकी यह छोटाई-

वडाई, ऊच और नीचपन, विपमता की वातें कोई भी नुकसान और हर्ज नही पैदा कर सकती।

उदाहरण के लिए एक हारमोनियम ही को लो। क्या हारमोनियम मे सब स्वर एक-से है ? नही, प्रत्येक स्वर भिन्न भिन्न है। वे एक-दूसरे से ऊचे नीचे है परन्तु इन सवमे एक अनुशासन है। उस अनुशासन का ही यह प्रताप है कि उस हारमोनियम मे मधुर राग-रागिनियो की भावपूर्ण और सुन्दर ध्वनिया प्रकट हो सकती हैं। इसी प्रकार अनुशासन रखने से समाज मे सौन्दय और व्यवस्था कायम होती है और समाज का सगठन मजबूत होता है। जो जातिया अनुशासन का पालन ठीक तौर से करती हैं, वे जातिया अजेय होती है। दुवलताए और अग-भग उनमे देखने मे नही आते। उनका सगठन वहुत मजबूत हो जाता है। इसके विपरीत मजदूर और पूजीपतियो के गुट, किसानो और जमीदारो के गुट, युवक और बूढो के गुट, स्त्रिया और पुरुषो के गुट, भिन्न भिन्न देश और भिन्न भिन्न समाज और भिन्न भिन्न जाति के गुट आपस मे टकराते है, और एक-दूसरे से युद्ध करना ही अपने सगठन का मूल कारण समझते हैं, जवकि इनको एक-दूसरे का विश्वस्त प्रेमी और मित्र वन जाने की आवश्यकता है। वास्तव में यह कहना चाहिए कि अनुशासन का ठीक उपयोग नही किया जा रहा है और इसका कारण यह है कि यह अनुशासन सगठन के तौर पर किया गया है सगठन के तौर पर अनुशासन नहीं होना चाहिए। जो अनुशासन सास्कृतिक आधार पर होगा वह उदार, महान और स्थायी होगा। उससे मानवता का विकास होगा, मानवता का धरातल ऊचा होगा। फिर उसमे छोटे-छोटे गुट नही वनेंगे।

संस्कृति क्या वस्तु है ? यह भी विचारने की बात है। हजारो-लाखो वर्षों के बीच जो मानवीय आचार-विचारो का निर्माण हुआ है, उन आचार-विचारो की कलात्मक और विवेक पूर्ण रूपरेखा ही संस्कृति है, जो मनुष्य के भीतरी और बाहरी जीवन को आन्दोलित करती है। संस्कृति के विषय मे भी लोग भ्रम मे हैं। जाति, राष्ट्र और समाज को भिन्न-भिन्न इकाई समझने वाले आदमी यह कहते हैं कि हमारी अपनी अपनी संस्कृति अलग-अलग है। भारतीय कहते है कि मनुष्य समाज मे अनुशासन की बडी कमी है। भिन्न भिन्न देशो मे जो अनुशासन दीख पडता है वह अनुशासन की दृष्टि मे अपूर्ण है। देश का सगठन मानवता के दृष्टिकोण से नही है। मनुष्य समाज मे कुछ बडे-बडे दोष हैं। एक दोष तो यह है कि मनुष्य समाज राष्ट्रीयता, जाति-भेद, देश-भेद, और वर्ग-भेद के टुकडो मे छिन्न-भिन्न है। अलग-अलग जातियो और राष्ट्रो का अलग सगठन है, और उस सगठन का दृष्टिकोण दूसरी जाति और दूसरे राष्ट्रो से लडकर उनके स्वार्थों को नीचे गिराना और अपने स्वार्थों की रक्षा करना है। इसी प्रकार जातियो और राष्ट्रो के अतिरिक्त वर्गों की भारी-भारी अलग-अलग टुकडिया हैं। ये टुकडिया भी अपने-अपने वर्गों के स्वार्थों की सिद्धि के लिए दूसरे वर्गों के स्वार्थों को नष्ट करने पर तुली हुई हैं। यह दासता, राष्ट्रीयता और वर्गो की भावनाए जब तक दुनिया से नष्ट नही हो जाती, तब तक मनुष्य समाज मे बिलकुल सही अनुशासन नही आ सकता।

वर्ग-भेद, जाति-भेद और राष्ट्र भेद से भिन्न भिन्न सगठनो का सबसे बडा भारी दूषण यह है कि वे परस्पर उन्ही से युद्ध

करना चाहते हैं, जिनके स्वार्थ बहुत निकटता से सम्बद्ध हैं। राजा और प्रजा दोनो एक-दूसरे से गुथे हुए हैं। परन्तु राजा और प्रजा दोनो के गुट, एक-दूसरे के विरुद्ध वडे से वडा आदोलन करना ही अपने स्वार्थों की रक्षा के लिए आवश्यक समझते है। भारतीय सस्कृति एक ओर है, यूरोपियन सस्कृति एक ओर, जमन सस्कृति एक अलग ही है। रूप ने एक पृथक् सोवियत सस्कृति की स्थापना की है। कितु मैं एक मानवीय *सस्कृति की वात कहता हू, जिसपर सारे विश्व के मनुष्यो की* सस्कृति निभर होती है। मनुष्य सस्कृति के चार स्तभ हो सकते हैं—प्रेम, विश्वास सहयोग और त्याग। इन चार मूल वस्तुओ को लेकर जब विश्व के मनुष्य अपनी सस्कृति का निर्माण करेंगे और उस सस्कृति हाथ मे अनुशासन समपण कर देंगे, तो सारे ससार के मनुष्य सुखी हो जाएगे। युद्ध अनावश्यक हो जाएगे, भिन्नता नष्ट हो जायेगी। एकता का उदय होगा और तव मानव समाज पर कल्याण की वर्षा होगी।

ब्रह्मचर्य और तप

पुरानी कहावत है "तन्दुरुस्ती हजार नियामत ।" जिस पुरुष ने धन खोया उसने कुछ खोया, जिसने धम खोया उसने बहुत कुछ खोया, पर जिसने स्वास्थ्य खोया उसने सब कुछ खोया।

पुराने शास्त्रकार कहते हैं, "धर्माथ काम मोक्षाणा आरोग्य मूलमुत्तमम् ।" अर्थात् "धम, अर्थ, काम और मोक्ष का मूल तन्दुरुस्ती है ।" प्रसिद्ध सिद्ध नागार्जुन के गुरु श्रीमद् गोविन्द पादाचाय जब अजर-अमर होने की विद्या नागार्जुन को सिखाने लगे, तब उन्होंने कहा था, "पुत्र, मुक्ति की प्राप्ति एक ही जन्म की तपस्या से नही हो सकती । फिर वह जन्म भी कैसा कि रोग-शोक से परिपूर्ण । इसलिए मुक्ति-तत्त्व जानने से प्रथम तू अजर-अमर होने की विद्या गुरु से सीख ।"

प्राचीनकाल मे मनुष्यो की शारीरिक शक्तिया कैसी थी, यह बात कही कही जब इतिहास मे दीख जाती है, तो आश्चर्य होता है। महाभारत के भीम का टोकरो भोजन करना और वृक्ष उखाडकर युद्ध करना प्रसिद्ध है। परन्तु उसी भीम को एक बार कर्ण ने ऐसा मारा कि उसे मरे हुए हाथियो के नीचे छिपकर जान बचानी पडी । हनुमान और अगद का शरीर-बल कैसा था ?

भगवान रामचद्रवन जाने लगे—तब उन्होने बहुत-सा दान-पुण्य किया। उस समय अयोध्या मे एक बूढा दरिद्र ब्राह्मण

रहता था। वह कही उस समय जगल मे लकडी काटने गया था। जब उसे राम के दान की सूचना मिली वह दौडा आया और याचना की।

राम ने हसकर कहा, "देवता, आप बडी देर मे आए। मैं तो सब नकदी दान कर चुका, परन्तु कुछ गाए शेष हैं और वे सरयू पार चर रही हैं, आप अपना डडा फेंककर मारिए, जहा तक डडा जाए, वहा तक की गाए आपकी।"

बूढे ने वहा खडे होकर डडा सरयू-पार फेंका और वह दस हजार गाए ले गया।

यह उदाहरण सुनकर जब हम अपने चारो ओर दुबले-पतले बच्चो और निस्तेज युवको को देखते है, तब कैसी निराशा होती है? दुबले हाथ-पैर, पेट निकला हुआ, पीला चेहरा, हर-दम रोना, मैला कुचैला वेश और सदा के रोगी। ऐसे हमारे बच्चे हैं। और पीले, पतले और रोगी, मुर्गी-सी गदन और नली-सी कलाई को बढिया वस्त्रो मे ढके पिचके हुए गालो को तेल से चुपडे और असमथ पैरो को चमकदार बूट मे ढाप जनानी माग निकाल, पतली छडी ले पान कचरते, पराई बहन-बेटियो को घूमते हुए ये हमारे नवयुवक।

स्त्रियो की दिशा देख आसू आते हैं। बेचारी बच्चो और गृह-सेवा के भार से चकनाचूर होकर कुछ ही वष की उम्र मे बुढिया या बीमार हो जाती है, कमजोर होकर प्रदर और नाना प्रकार के रोगो मे सडकर मरती है।

हमने देखा, हट्टी-कट्टी, जवान, तदुरुस्त लडकी ब्याहकर ससुराल गई, परन्तु चार-पाच साल बाद ही वह पीली, सुस्त, रोगी और प्रौढ-सी दीखने लगी।

इसका कारण हमारी गरीबी और अशिक्षा है। अगर हम शिक्षित हो तो गरीब होने पर भी तन्दुरुस्त हो सकते है। अगर हम विचार और नियम से भोजन, वस्त्र, मकान और रहन-सहन मे तन्दुरुस्ती का ध्यान रखे—तो हमारी गरीबी मे भी आनन्द पूर्ण हो जाए।

मन और इन्द्रियो को वश मे रख, मन-वचन-कर्म से दुराचारो से बचकर, परमात्मा को सदा, सब जगह हाजिर मानकर यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि अच्छे विचार सम्पूर्ण जीवन पर अच्छा प्रभाव डालते है और बुरे विचार बुरा। कोई काम करे या न करे मन मे उत्पन्न विचार मात्र से सम्पूर्ण जीवन का सकल्प प्रभावित होता है। मन के अन्दर ही वह शक्ति है जो मनुष्य के अच्छे-बुरे कामो के परिणाम का निर्णय बिना अपवाद के देती रहती है। इसलिए अच्छे सकल्प से आत्मा निर्मल होती है, मन और इन्द्रियो का नियन्त्रण होता है, आहार-विहार सयम मे रहता है और यही तन्दुरुस्ती का मूल मन्त्र है।

बाकी रही अब डोरी

होली जलाओ, दिवाली की दिवाली और जीवन की होली जलाओ, मनाओ। यही तो मरी हुइ जातियो का त्योहार है। आओ हम यह त्योहार मनाए। कभी वह दिन भी थे कि हमारे घरो मे रात दिवाली और दिन होली थे। सारी पृथ्वी पर हमारी सस्कृति थी। नगी तलवार की धार पर चलकर रण मे हमारे पूवजो ने ऐसी-ऐसी लाल होलिया खेली हैं कि दुनिया जानती है। परन्तु आज वे दिन कहा है ?

घोर अधकार की छाती को विदीर्ण करके श्मशान की अशुचि वायु-तरगो मे मिलकर ध्वनि आ रही है

माला हुत तिह के
सब फूल गए झरि, बाकी रही अब डोरी

समय जैसा नीरव, वीभत्स और दारुण है, ध्वनि भी वैसी ही करुण-हताश और कपित है। सबने मिलकर एक ऐसा हृदय-द्रावक भाव उत्पन्न कर रखा है कि कोई सहृदय सुनकर स्थिर नही रह सकता।

जिस मुख से यह ध्वनि स्पन्दित हो रही है वह अलौकिक शोभा का पुज है। उसके बडे-बडे नेत्रो का यद्यपि लावण्य नही मारा गया है, तथापि उनके चारो ओर कलौंस का मडल छा गया है। उसके ओष्ठ की मधुरता अभी नही धुली है, पर फीकी अवश्य पड गई है। वह काचन-काय, धूल धूसरित अवस्था मे जब-जब कम्पित स्वर, कुचित ओष्ठ, विमोचित नयन और

शीतल नि श्वासो के साथ कहता है
माला हुति तिहि के
सब फूल गए झरि, बाकी रही अब डोरी।

तब तब मानो करुणा का ज्वार उमडने लगता है। मनुष्य, पशु और पक्षी, चेतन अवचेतन सब उसे सुनकर चचल हो उठते हैं।

क्यो ? इस क्रदन ध्वनि मे इतना दु ख क्यो है ? इसलिए कि इसमे अतीत की चिन्ता है। ससार मे अनेक दु ख है, पर दैव-दुर्विपाक से अकाल-दलित हृदयो को अपना अतीत का समृद्धि-शाली चिंतन बडा दारुण दु ख देता है। उस दु ख को न कोई कह सकता है, न कोई सुन सकता है।

अच्छा बताओ, यह कौन अभागा है ? यह वह है जिसने अपनी आयु का अधिकाश स्वार्थों मे व्यतीत किया है। उस समय इसे सारे ससार का शासन करना पडा था, हजारो-लाखो युद्ध करने पडे थे, कला कौशल का प्रचार करना पडा था। अनन्त वायुमडल, जल की अथाह राशि, विस्तृत भूभाग—सवपर इसका समान शासन था। सौन्दर्य के स्वर्ग की छाती पर इसकी एक विशाल धवल अट्टालिका थी, जो ज्योत्स्ना की उज्ज्वल छटा को अपने आनन्दित मन्द हास से सदा आलोकित रखती थी। उस-पर खडे होकर यह वीर अपने बाहुओ से उपार्जित ऐश्वय का निरीक्षण करके, न मालूम किन-किन बातो को याद करके सिर हिलाया करता था।

इसकी जगद्विजयिनी सेना थी, और दिगन्त-व्यापिनी शक्ति। काम का पहाड था जो इसके सामने पडा था। ऐश्वर्य का समुद्र था, जो इसकी ठोकरो मे हिलोरें लिया करता था।

इसकी मूछ का एक बाल मुस्करा उठता था तो ससार को उसकी मर्यादा की रक्षा करने के लिए अट्टहास करना पडता था। और यदि इसकी भृकुटी के किसी बाल मे बल आ जाता तो सारे ससार को उस कोप का दड देखने के लिए सास बन्द करके खडा रहना पडता था। ऐसा ही इसका अतीत काल था, जो इस समय अशक्त शरीर, भग्नहृदय, नष्टज्योति, भ्रष्ट-अधिकार, धूलि धूसरित, श्मशान की अशुचि भूमि मे अपने उसी अतीत की चिता मे कह रहा है

माला हुति तिहिं के
सब फूल गए झरि, बाकी रही अब डोरी।

इस क्रन्दन का कारुण्य अब तुमने समझा ? पर इसे पहचाना भी ? इसपर दया के आसू बहाने से पहले, इसपर सहानुभूति के फूल बरसाने से पहले इसे पहचान तो लो, फिर दया-सहानुभूति का स्वरूप ही बदल जाएगा। सुनो, यही तुम्हारा भाग्य है—बस रोओ ! अच्छी तरह रोओ !

पर ठहरो ! रोने से होगा क्या ? ससार युद्ध का मैदान था, तुमने इसे प्रमोद-वन समझकर स्वच्छद विहार किया, अत मे टकराकर-गिरकर कुचल ही गए। भूल हुई है। पर भूल का प्रतिशोध रोने से नही होता, रोना तो पाप का परिशोध है, भूल का परिशोध है कर्त्तव्य। वही कर्त्तव्य तुम्हारा पथ होना चाहिए। वही समृद्धि, वही स्वातत्य, वही सुख-सौरभ अभी इस ससार मे है, वे कही उठ नही गए हैं, न वे गुलबकावली की तरह अजगरो से घिरी हुई दुरूह भूमि पर ही हैं कि प्राप्ति की आशा ही न रहे। वे अत्यन्त सुगम स्थान पर हैं। तुम्हारे अनेक भाई उन्हे देख आए हैं। सुना है जिनके पास है। वे उनसे ऊब गए है और

नीलाम करना चाहते हैं। तुम क्या सचमुच उन्हे लेना चाहते हो ? तुम्हे क्या वास्तव मे उनकी प्यास है ? तो जाओ ! रोने मे क्या धरा है ? कत्तव्य पर जूझ जाओ। काय मे जुट जाओ, परिश्रम मे पिल पडो। माग भटक गए हो, उसे ढूढो। शक्ति बिखर गई है, उसे सग्रहकरो। सहायक नष्ट हो गए हैं, उन्हे पैदा करो। दौडो, जान पर खेलकर दौडो। जिन्हे तुमने टुकडो से पाला था, जो किसी योग्य नही थे, उन्होने दौडकर कुछ पाया है, फिर क्या तुम नही पाओगे ?

स्मरण रखो, इच्छा करने से तुमने सब कुछ खोया है और इच्छा करने से ही प्राप्त करोगे।

'सब दिन होत न एक समान।' जमाना बदल गया, हवा बदल गई। शिक्षा-दीक्षा, विचार-आचार सब बदल गए। ज्ञान से प्रलाप, शक्ति से पर-पीडन, धन से मद और सेवा से घृणा उत्पन्न हो गई, ब्रह्मचय व्रत टूट गया, गृहस्थ की पवित्र शय्या व्यभिचार से कलुषित हो गई। निबल हृदय मनुष्यो ने वानप्रस्थ और सन्यास द्वारा मोक्ष-द्वार उद्घाटन की अपेक्षा खासते-खासते और गालिया खाते खाते खाट मे सडकर मर जाने को उत्तम समझा। सब सम्बन्ध-नियम बिगड गए। अपनी मनस्तुष्टि के लिए लोगो का बलिदान किया जाने लगा, परस्पर की सहानुभूति नष्ट होने लगी, मनुष्यो के प्राण-सहारक अस्त्रो का प्रादुर्भाव हुआ, धीरे धीरे सुदर मानवरूपी देवगण अपने प्रेमक्रीडा-कानन से बहक लोहू और लोहे का सिहनाद करते हुए मैदान मे जाकर कट मरे।

कहा तो शिवि का कबूतर के लिए अपना मास काटकर देना, कहा सिह के लिए दिलीप और मोरध्वज का आत्मदान। और

कहा यह अकारण हठ के लिए ही मनुष्य की छाती मे विषैले फौलाद की तेज धार झोक देना। इधर माता की छाती मे बच्चे के लिए दूध उमड रहा है, उधर बच्चे लोहू और लोहे का खेल खेल रहे हैं—इस कष्ट का, पतन का, मूखता का कुछ ठिकाना था! फिर देश क्यो न गिर जाए? जाति क्यो न मिट्टी मे मिल जाए? समाज क्यो न ठुकराया जाए? वही हुआ। जिस देश की धार्मिक, नैतिक, आध्यात्मिक स्थिति सदा ससार को अनुकरणीय रही है, उसी देश के पतित स्वरूप को देखकर सारा ससार उपहास कर रहा है।

सारे ससार की सभ्य जातिया इस बात पर एकमत हैं कि बच्चे माता-पिता की सम्पत्ति नही है, वे समाज की सम्पत्ति है। समाज को जब-जब जैसे बच्चो की आवश्यकता हुई तब-तब वैसे बच्चो को उत्पन्न करने को उसने सवसाधारण को उत्तेजन और सहायता दी। निकम्मे, दब्बू और डरपोक तथा अल्पायु बच्चो को समाज ने कभी जीवित नही रहने दिया। जो देश सुखी, समृद्धिशाली होगा उसकी जनसख्या बढनी सम्भव ही है, पर जनसख्या की निस्सीम वृद्धि से जो समाज पर आपत्तिया आती हैं उन्हे रोकना भी बुद्धिमानी का काम है। प्राचीनकाल मे ग्रीस देश के नेता क्रीट, सोलन, फीडन, प्लेटो और अरस्तू आदि को बच्चो की उत्पत्ति समाज की मुट्ठी मे रहे और निस्सीम जनवृद्धि न होने पाए इस सम्बन्ध मे चेष्टा करनी पडी थी।

प्लेटो ने स्वतन्त्र राज्यो की स्वतन्त्र प्रजा के मनुष्यो की और निवासस्थानो की सख्या निर्णीत की थी। इस सख्या मे कमी-बेशी न होने पाए, यह प्रबन्ध करना उस राज्य के मजि-

स्ट्रेट का काम था। पिता के यदि एक से अधिक पुत्र हो, तो वह उन्हे बिना पुत्रवालो को दे डाले और पुत्री को ब्याह मे देकर अपने एक पुत्र को ही समस्त सम्पत्ति का स्वामी बनावे। इस तरह पिता की मृत्यु के पीछे उस टुकुम्ब मे एक ही पुरुष रह जाएगा और स्वतन्त्र प्रजा की सख्या समान रूप मे स्थिर रहेगी। मजिस्ट्रेट की आज्ञा के विरुद्ध विवाह करना, अधिक सतानोत्पत्ति करना, निर्धारित आयु के पूव या पश्चात् सतान उत्पन्न करना—राजाज्ञा के विपरीत चलना समझा जाता था और उन्हे दड देने की व्यवस्था थी। मजिस्ट्रेट की आज्ञा से सर्वोत्तम प्रजा की सतति शहर के बाहर उन दाइयो के पास भेज दी जाती थी, जो इसी काय के लिए नियत थी। आज्ञा-विरुद्ध विवाह करने वालो की, अयोग्य-रोगग्रसित स्त्री पुरुषो-की, अथवा अधिक सन्तान पैदा करनेवालो की सन्तति के नियमन को कडाई से लागू करने के लिए मजिस्ट्रेट की कठोर आज्ञा थी।

प्राचीन आय-पद्धति के अनुसार ज्यो ही बालक समथ हो जाता था, त्यो ही माता पिता उसे उपनयन करके गुरुकुल को सौप दिया करते थे जो कि देश भर के सब प्रकार चुने हुए वीत-रागी महात्माओ का निवास होता था। वहा वे महापुरुष उसकी रुचि, प्रारब्ध, शरीर-सपत्ति, जीवन, बल आदि का सूक्ष्म वैज्ञानिक परिशोध करके उसीके अनुकूल शिक्षा देते और अन्त में उसकी परिपक्व अवस्था मे उसके गुण-कर्मों की जाच की जाती और अपने मन-वचन-कम की सघशक्ति को वह जिस प्रकार की समाज सेवा मे लगाने योग्य होता उसी योग्य श्रेणी मे उसे प्रवेश करा दिया जाता। सामाजिक स्वस्थता और प्रेम बनाए रखने

के लिए यह कैसी सुदर रीति थी। राजा और रक प्रत्येक का बालक गुरुकुल बिना आए नही रह सकता था, और सबको अपना कुल गौरव त्यागकर भ्रातृ भाव से विनीत होकर गुरु-सेवा और भिक्षा द्वारा विद्योपाजन करना पडता था। आज कितने अनाथ बालक बालिकाए गली गली भिक्षा मागते फिरते हैं। और उन्हे घर की देविया और दुकान के देवता किस प्रकार कुत्तो की तरह दुर्दुराया करते है, और उनके सुदर नौनिहाल किस प्रकार मलाई खाकर जूठा दोना उनकी ओर फेंककर एकाध दुर्वाक्य कह देते हैं! गुरुकुल प्रणाली मे ज्योही किसी बालक ने प्रिय मधुर स्वर से पुकारा, "माता, भिक्षा" तो प्रत्येक गृहिणी की छाती मे दूध उमड आता था। उसे तुरन्त स्मरण होता था—उसका लडका भी कहीं इसी प्रकार किसीके द्वार पर किसीको "माता, भिक्षा" कह रहा होगा। वह दौडकर अपने ही पुत्र की तरह उसे स्नेह करती और घर मे जो कुछ होता उसकी गोद मे डालकर पुचकारती थी। आह! कैसी स्वर्गिक जातीयता थी, क्या ही प्यारा सगठन था। कहा गया वह काल और कहा गया वह क्रम!!!

सम्पदा-विहारी कृष्ण और दरिद्र मूर्ति सुदामा की वह आलौकिक मित्रता क्या गुरुकुल-प्रणाली के बिना सभव हो सकती थी?

इसीसे करुणध्वनि आ रही है

माला हुति तिहि के
सब फूल गए झरि बाकी रही अब डोरी।

हम और वह

हमने अपने लिए सब कुछ किया और मरते दम तक करते रहेगे। पाप पुण्य, धर्म अधर्म की हमे परवाह नही। हमारी यह अभिलाषा है कि हमारा धन बढे, नाम बढे, इज्जत बढे और हम जितने बडे बन सकें, बनें, जितने सुखी हो सकें, हो!

यह सब हो गया। कुछ हमारी तकदीर ने जोर मारा, कुछ हमारे परिश्रम, सज्जनता, योग्यता ने मदद की। हम जो कुछ चाहते थे, मिला। हमारा बडा मान बढा, राजदरबार मे हमे कुर्सी मिलने लगी, बडे-बडे राजा और रईस हमारे मित्र हुए, लोग हमे सेठ और बडे मानने लगे। हमने बडी भारी हवेली बनाई, हम करोडपति हो गए, मोटरगाडी खरीदी। हमारी स्त्रिया हीरे-मोती से गुडियो की तरह सजी। हमारे बेटे-पोते सेठ, जज, बैरिस्टर और हाकिम बने। लोग हमे सरकार और हुजूर कहकर पुकारने लगे।

एक आदमी दुबला, मैला, नगे पैर, फटेहाल, वृद्ध, रोगी और दु खी कापता हुआ हमारी ड्योढी पर आया। हमारे मगरूर नौकर ने उसे धक्का देकर निकाल दिया। इज्जतदार के द्वार पर बेइज्जत का क्या काम? अमीर के द्वार पर गरीब क्यो आया? जहा राजा और रईस दावत उडाते हैं, वहा गरीब कैसे टुकडे खाएगा?

मगर वह अभागा गया नही, बैठ गया। उसने धरना दे दिया, वह बिना मिले जाना नही चाहता था। नौकरो ने कहा

"हुजूर, एक भिखारी सरकार से मिलने की जिद कर रहा है।"

हमारे घमण्डी बेटा ने जवानी के जोश मे कहा, "उसे धक्के देकर निकाल दो।'

पोते ने कैंची के समान जबान चलाते हुए कहा, "उसे पुलिस मे भेज दो।"

हमने मेहरबानी से कहा, "उसे यहा हाजिर करो।"

वह आकर सीधा तनकर खडा हो गया। न सलाम न पैगाम। वह खडा रहा।

हमने कहा, "तुम कौन हो ?"

उसने जवाब नही दिया।

हमने कहा, "क्या चाहते हो ?"

वह न बोला। हमने कहा, "बैठो।"

वह खडा रहा। लडके हस पडे।

एक ने कहा, "गूगा है।'

एक ने कहा, 'पागल है।"

एक ने उसकी तरफ देख मुह बिचका दिया।

उसने देखा, उसके होठ हिले, वह और भी सीधा तनकर खडा हुआ। मगरूरी और निर्भयता उसकी आँखो मे थी, वह इस तरह खडा था जैसे कोई बडा भारी राजा किसी अपनी प्रजा के घर खडा हो। उसे अपने फटे कपडे और मैले वेश की परवाह न थी। हमसे उसकी गुस्ताखी सही न गई। हमने कहा, "जो कहना है जल्दी कहो, ज्यादा हमे फुर्सत नही है।"

उसने ताने के स्वर मे किन्तु दृढता से कहा, "क्या मैं आपको हुजूर कहकर पुकारू ?"

हमने नाराज होकर कहा, "तुम्हारी जो मर्जी हो वही कह-

कर पुकारो।"

उसने कहा, "आपके घर के नौकर-चाकर, ठाठ और अमीरी को देखते मैं गरीब अपनी मर्जी के माफिक आपको कैसे पुकार सकता हू ? पर जब आप हुक्म ही देते है तब मैं आपको 'तुम' कहकर और आपका नाम लेकर पुकारना चाहता हू।"

ऐसी बेअदबी ? हमारे समाने ? हम पद्मश्री, जिसे राष्ट्रपति भी कुर्सी देते है और हाथ मिलाते है। यह कगला हमारा नाम लेकर पुकारेगा ? ताव-पेच खाकर हमने कहा, "तुम कौन हो ?"

उसने अकडकर जरा करारे स्वर मे कहा, 'मैं तुम्हारे बडे भाई के जमाई का सगा बाप, तुम्हारा सम्बन्धी, तुम्हारे कुल का पूज्य हू। उम्र मे तुम्हारे पिता से दस वर्ष बडा और उनका मित्र तथा रक्षक हू। वे मेरे पिता के मुनीम थे, उन्होने नौ वर्ष उनकी चिलमे भरी और धोती धोई थी। मेरे पिता ने उनका विवाह किया था और तुमने बहुधा मेरी माता से रोटी का टुकडा पाया है। आज भी तुम्हारे बडे भाई की लडकी मेरे लडके का जूठन खा रही है। तुम अब इस गद्दी पर आकर ऐसे हो गए हो।"

हमारा मुह पहले लाल और पीछे पीला और फिर सफेद हो गया। हमने बहुत कोशिश की कि उसकी आख से आख मिलावें, पर हो न सका, हमारी आख नीचे को झुक गई।

उसने एक बार हमारी हवेली को सिर उठाकर ऊपर-नीचे देखा, नौकरो की चमचमाती वर्दी को, मोटर और गाडियो को देखा फिर एक नजर अपने फटे वस्त्र पर डालकर कहा, "आज तुम्हारे ये ठाठ हैं। आज तुम बडे आदमी बने। उसका नतीजा यह हुआ कि तुम्हारे नौकरो ने मुझे धक्के दिए। इन फटे कपडो

की वदौलत ! इस बुढापे की सफेदी और कमजोरी की वदौ
गाव मे आया था—सुना, तुम वडे आदमी हो गए हो । एक
तुम्हारा मुख आख भरकर देखने की इच्छा थी । हम ग
हमारी सात पुश्त गरीव, हमारा खानदान गरीव पर अन
आदमी के कुत्ते को भी रूखी सूखी रोटिया और ठण्डा प
आधी रात भी हमारे घर मे हाजिर रहता है । क्या तुम सद
ऐसे थे ? तुम्हारे वाप और दादे भी क्या ऐसे थे ? मैंने तुम
बाप को देखा है, उनकी जिंदगी मेरे जैसे कपडे पहनते बीत ग
तुम्हारे नौकर उन्हे भी धक्के मारते ? ओफ, कैसा व
वडप्पन है, कैसी वडी आवरू है । तुम कैसे वडे आदमी हो !

यह कहकर वह खिलखिलाकर पागल की तरह हस पड
हमसे न रहा गया । हमने खडे होकर कहा, "आइए पधा
माफ कीजिए, हमने आपको पहचाना नही ।"

उसने कहा, "तुमने नही देखा कि यह गरीव आदमी
बूढा आदमी है और किसी मतलब से हमारे पास आया है ?
गरीवो की इज्जत नही कर सकते ? यह जानकर भी कि तुम्ह
वाप भी गरीब और बूढे थे ? तुम आख के अधे सिर्फ अप
महल, धन और शान-शौकत देखते हो ।

"मगरूर, हाड-मास के पुतले, तुझपर धिक्कार, तेरी ध
दौलत पर धिक्कार ! हजारो लाखो रोते हुओ मे तू हसता
हजारों भूख से छटपटाते हुओ मे तू पेट भर माल उडाता
हजारो नगो मे, जो चिथडो से लाज ढक रहे है, तू रेशम औ
तनजेव पहनता है । तुझे इनपर तरस नही आता, दया न
आती ? तुझे अपने ऊपर शर्म भी नही आती ? ओफ ! पत्थ
के हृदयहीन पुतले धिक्कार ! ! धिक्कार ! ! !

"यदि मैं अपने शरीर को चीरकर उसका खून निकालू और तेरे शरीर के खून मे मिला दू, तब तुझमे और मुझमे अन्तर क्या है ? क्या तुझे मालूम है कि तेरी पुत्री और मेरे पुत्र ने अपनी आत्मा और अपने रक्त-मास को मिलाकर एक प्यारा-पवित्र बच्चा बनाया है ? क्या तू उसे देखकर लज्जित होगा ?"

हमारे सिर मे चक्कर आ रहा था। हमने देखा, यह मैले वेश मे देवदूत खडा है। यह महान पुरुष परमेश्वर का अवतार है। उसका वृद्ध शरीर मैले और फटे वस्त्रो मे ऐसा सज रहा था, जैसे बादलो मे चन्द्रमा ! हमने कहा, "पूज्यवर ! मान्यवर ! विराजिए, इस घर को अपने चरणो से पवित्र कीजिए। इस दास का जन्म सफल कीजिए, अपने चरणो की धूल इस घमण्डी सिर पर दीजिए।"

उसने कुछ न सुना। वह कह रहा था, "जगत् मे ऐसा कौन-सा पशु है। जो अपने लिए सब कुछ न करता हो। पर औरो के लिए त्यागनेवाले महात्मा कहा है ? नदी बह रही है, दुनिया उसका मीठा जल पीकर प्यास बुझाती है, यही उसकी शोभा है। वृक्ष फलते हैं, लोग उनकी छाया मे बैठते हैं, डाली तोडते है, पत्थर मारकर फल गिराते है, इतने पर भी वृक्ष इनके बदले मीठे फल देते है। यह उनका बडप्पन है। लकडी जल रही है, पर लोगो की रसोई बन रही है। दिया जल रहा है, पर लोगो के घर मे उजाला हो रहा है। ये छोटी-छोटी वस्तुए—परमेश्वर के राज्य मे अपना आपा खोकर, जलकर औरो के काम आती हैं। यह उनका बडप्पन है, पर तेरा बडप्पन क्या है ? तूने अपने लिए महल और सवारिया बनाई है, तेरे लाखो देश-भाइयो को जन्म-भर पैर मे जूते मुअस्सर नही होते। वे झोपडो मे जन्म

गुजारते है। तू छत्तीस प्रकार के व्यजन नित्य खाता है और तेरे वे भाई केवल सूखे टुकडो पर सतोष करते है। तू और तेरी सम्पदा किसीके मतलब की नही ! तेरे द्वार पर आकर तेरे भाई, तेरे मान्य, तेरे पूज्य धक्के खाते है। मूर्ख, तू अपने बडप्पन पर फिर भी अभिमान करता है ? अभागे ! बदनसीब ! !

"वह देख ! तेरी चिता की लकडिया सूख रही है। वह देख ! मौत तेरी घात मे है, तू अपने पत्थरो और सोने को देख देखकर हसता रह और वह अचानक तेरा गला आ दबाएगी। वह पहले तेरी आख छीन लेगी और तू इनमे से किसीको न देख सकेगा—जिन्हे देखकर तू इतरा रहा है। फिर वह तेरे कान छीन लेगी और तब अपने प्यारे बच्चो की आवाज भी नही सुन सकेगा। इसके बाद, धीरे धीरे तेरी नस नस मे से प्राण खीचे जाएगे। सब टाठ यही रहेगे। तेरे प्राण यम-पाश मे बधकर महाप्रभु के चरणो मे दण्ड की आज्ञा सुनने जाएगे। और यह अधम शरीर जिसमे सदा घृणित वस्तुए भरी रहती हैं, इसे तेरे प्यारे, जिनपर तू भरोसा करता है, फूककर क्षार कर आवेंगे। ! !

"महाप्रभु तेरी आत्मा को कर्म फल देंगे। सम्भव है तुझे सर्प की योनि मिले और किसी अधेरे तहखाने की गन्दी और सडी जगह मे, किसी पुराने खजाने की रक्षा करने का काम तुझे मिले। क्योकि तू यहा भी खजाने से प्रेम करता है। और चूकि तू अपने भाइयो को नही देखता, सम्भव है तुझे अधेरी सुरगो का कोई अन्धा कीडा बना दिया जाए।"

हमारा होश ठीक न था, हमने कहा, "हे स्वामी, क्षमा करो। हे प्रभु, हे ज्ञानी, सब समय गया ! आखें खुल गइ। रक्षा

करो, रक्षा करो, हे महात्मन्, मार्ग दिखाओ। मैं अधम-तुच्छ आदमी कदापि इस धन-दौलत का स्वामी नही।"

हमने धरती मे गिरकर उस देव-पुरुप के चरण पकड लिए।

वह पुरुप शात-अचल खडा कुछ देर देखता रहा। फिर उसने अपने ओठ हिलाये और चला गया। हमे कर्त्तव्य की रेखा दीख गई थी। हमने प्रतिज्ञा की कि जब तक हमारा एक भाई भी दरिद्र और भूख है, हम अपने को बडा आदमी नही समझेंगे। हम तुच्छा तितुच्छ हैं। हमारा धन-दौलत, शरीर-प्राण—सब हमारे देश और भाइयो का है। सर्वशक्तिमान ईश्वर के सम्मुख हम यह प्रतिज्ञा करते है।।

नीच और ऊंच

मकान की मरम्मत करानी थी। एक राज और एक मजदूर बुलाकर काम शुरू कर दिया। राज साफ-सुथरे कपडे पहने हुए था, पर मजदूर बडा गन्दा था। उसके वस्त्र फटे तो न थे, पर बडे मैले और बदबूदार थे। वह काम करने मे भी सुस्त और बोल-चाल मे बेहूदा था। राज की बोल-चाल सुसभ्य और उत्तम थी, वह नम्रता से बोलता था—पर उसकी नम्रता मे दब्बूपन का भाव न था। थोडी थोडी देर मे वह मजदूर पर बिगडता था, और जल्दी काम करने की ताकीद करता था। मजदूर उसकी फटकार खाकर कुछ देर ठीक काम करता, पर फिर जी चुराता।

इस दृश्य को हम कुछ देर तक देखते रहे। वास्तव मे यह कोई ऐसी घटना न थी कि जिसपर ध्यान दिया जाय। ऐसी घटनाए तो प्राय होती ही रहती है। परन्तु जब कई फटकार खाने पर भी मजदूर अपनी मूखता से बाज न आया, तब हमने उससे कुछ कहना चाहा। पास जाकर देखा तो उसके कण्ठ मे जनेऊ था।

हमने उससे पूछा, "तू कौन जात है ?"

उसने कहा, "ब्राह्मण हू।"

सुनकर दिल पर चोट लगी। राज जात का अगरिया चमार था।

हमे एक बार ही चिन्ता के सागर मे डूब जाना पडा। हमारी चिन्ता यह थी कि यह चमार इस ब्राह्मण पर कैसी आज्ञा

चला रहा है ? और इसे बोलने की जरा भी गुजाइश नही। यह ब्राह्मण और यह चमार ! पर वास्तव मे इस वक्त ऊच कौन है, और नीच कौन ?

यह ऊच और नीच का सवाल साधारण सवाल नही है। सभी जानते है कि गिरी से गिरी दशा का ब्राह्मण भी—चाहे वह कोढी, जुआरी, मूख, शराबी, कैसा ही क्यो न हो अपने ब्राह्मणपने के ऊचेपन को नही भूलता। हमे याद है, एक बार एक ब्राह्मण हमारे पास सस्कृत पढने आया। आते वक्त उसने दोनो हाथ फैलाकर आशीर्वाद दिया, फिर जमीन पर पढने बैठ गया। यह देखकर हमे हसी आ गई।

हमने कहा, "भाई, तुमने आशीर्वाद किस नाते से दिया, गुरु को आशीर्वाद देना किस शास्त्र की शिक्षा है ?"

ब्राह्मण ने कुछ लज्जित होकर कहा, "महाराज ! मैं मूख हू इसलिए चार अक्षर सीखने आया हू। पर ब्राह्मण तो हू ही, आप क्षत्रिय है इसीसे आशीर्वाद दिया। अपराध हुआ हो तो क्षमा करें।"

हमने कहा, "ब्राह्मण वही है, जो विद्वान, त्यागी और सदाचारी है। तुममे ब्राह्मणत्व की कमी है, पर यदि तुम अपने जन्म के ब्राह्मणत्व को काफी समझते हो, तो पढने का ध्यान छोड दो। पढने मे ही क्या रखा है ?"

कुछ विवाद के बाद उसने क्षमा मागी और प्रणाम किया। यह एक ऐसी घटना है, जो प्राय हजारो मनुष्यो के सामने आती रहती है। इस विषय में सिफ यही बात नही है कि ब्राह्मण अपने को उच्च और दूसरो को नीचा समझे। अगर ऐसा ही हो तो यह स्वाभाविक बात है परतु मजेदार बात तो यही है कि अन्य

जाति के लोग भी, चाहे जितने योग्य हो, अपने को महामूख ब्राह्मण से नीचा ही समझेंगे। हमारे यहा एक चपरासी ब्राह्मण था, रसोइया ब्राह्मण रहा है। उस दिन मजदूर ब्राह्मण था, जो चमार की अधीनता मे काम कर रहा था परन्तु इन सबमे हमने ब्राह्मणपने का झूठा घमण्ड पाया। आनन्द की बात होती कि यह घमण्ड वीरतायुक्त होता और ये लोग उन्नत होकर मजदूरी के जीवन से ऊपर उठते परन्तु यह बात न थी। मजदूरी के काम करने मे जहा उन्हे लज्जा न थी, वहा ब्राह्मण कहाने मे भी लज्जा न थी। अब यहा प्रश्न उठता है कि क्या यह नीच-ऊच का मामला अब भी इसी तरह चलता रहेगा ?

क्या यूरोप मे भी ऐसा ही है ? एक बार जब बबई के अग्रेज गर्वनर अपना समय पूरा होने पर अपने देश इग्लड जाने लगे, तब शहर के लोगो ने उनकी विदाई की खुशी मे जलसा किया। उस समय उन्होने कहा था कि मैं इतने अच्छे जूते बनाना जानता हू कि अगर मैं अब विलायत मे जाकर यही काम करू तो एक जोडा जूता पचास रुपये से कम मे न बिकेगा। लायड जार्ज, जो गत यूरोपियन युद्ध मे अग्रेजी राज्य के प्रधानमत्री थे, एक चमार के भाजे थे। पर चमार होने ही से क्या उनकी तरफ कोई नीची निगाह से देखता है ? या उनका तिरस्कार कर सकता है ? भारतवर्ष मे ही क्या रैदास, कबीर और सदन नीची जाति मे नही पैदा हुए ? क्या आज लाखो नर-नारी इन धर्मात्माओ के चरणो मे सिर नही झुकाते ? कैसे खेद और अनुताप की बात है कि हम मूखतावश चुपचाप झुके चले जाते हैं। अधिकार और शक्ति दोनो बडी चीजें हैं। जो मनुष्य अपने अधिकार और शक्ति को जान जाते हैं और उनकी रक्षा करना

अपने जीवन का मुख्य काम समझते हैं, वे जरूरत पडने पर सवनाश होने पर भी अपने अधिकार की रक्षा करते हैं। राजपूतो के इतिहास इस बात के साक्षी है। मुसलमानो की तूफानी शक्ति ने राजपूतो को कुचल डालने मे कुछ कसर नही की, पर राजपूतो ने प्राण देकर अधिकारो की रक्षा की थी। इसमें सन्देह नही कि भारतीय समाज की दशा बडी शोचनीय है। सिफ ब्राह्मण ही इस बात के अपराधी नही हैं कि उन्होने अन्य जातियो को अपने से नीचे बनाए रखने के लिए अनथ किया है। हम तो कहेगे कि प्रत्येक ऊची जाति नीची जाति को दबाए रहती है। हम उच्च कही जाने वाली अनेक जातियो के व्यक्तियो से पूछना चाहते हैं कि क्या कुत्ते के पिल्ले हमारे घरो मे गद्दो और कालीनो पर नही खेलते ?

क्या हम नीच जाति के मनुष्यो को नीचे दबाकर अपना ही नाश नही कर रहे हैं ? जब हम अपने से नीच जाति के आदमियो को बराबरी का दर्जा न देंगे, तो हमसे ऊची जाति के आदमी हमे कैसे बराबरी का दर्जा देंगे ?

एक बार सन् १९२६ मे हमे सम्मेलन की अध्यक्षता करने भागलपुर जाना पडा। हमे ठहराया तो गया था एक पृथक् आलीशन कोठी मे, परन्तु भोजन की व्यवस्था सम्मेलन की ओर से की गई थी। मैं कुछ अस्वस्थ था और तीन-चार दिन अधिक काय भार से वही रुग्ण होकर भयकर रूप से बीमार हो गया। फलत मुझे दो मास तक वही रहना पडा। [illegible] स्वामी ने भी मेरी सेवा-सुश्रूषा मे कष्ट उठाया। [illegible] होने पर जब मैं वहा से चलने लगा तब गृहस्वामी [illegible] लिया कि अगली बार भागलपुर आने पर [illegible]

स्वीकार करू। कुछ मास बाद एक शास्त्राथ के मिलसिले मे मुझे फिर भागलपुर जाना पड़ा। इस बार मैं उन्हीके यहा ठहरा और भोजन किया। थोडी देर बाद ही मेरे मित्रगण आए और बडी व्यग्रता से भोजन की व्यवस्था करने लगे। मैंने उन्हे रोककर कहा कि सब व्यवस्था गृहस्वामी ने कर दी है और मैंने उनके यहा भोजन किया है। यह सुनकर वे चकित हुए। उन्होने कहा, "*गृहपति जाति के कलाल हैं, हम तो उनके हाथ का पानी* भी नही पीते।"

मैने कहा, "मैं तो इस बात की परवाह नही करता। मेरी दृष्टि मे ये सज्जन अत्यन्त पवित्र, उच्च और सम्माननीय हैं। मेरी आत्मा इन्हे कभी नीचा नही मान सकती। मुझे एक-दो वार चमार जाति के एक विद्वान भाई के हाथ का शरवत पीने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। जमनालाल बजाज के चौके मे वैठकर एक ऐसी ही पक्ति मे भोजन कर चुका हू जिसमे ब्राह्मण, शूद्र, अछूत और मुसलमान सज्जन भी थे। इन सबके साथ भोजन करने पर भी मैंने अच्छी तरह अपने-आपको देख लिया कि मैं किसी हालत मे किसी तरह अशुद्ध नही हुआ।"

परन्तु बात यही पर समाप्त नही हुई। जिनसे शास्त्राथ होने वाला था, उन ब्राह्मणो ने जब सुना कि मैं गृहपति के यहा कच्चा भोजन—दाल-चावल-शाक और रोटी खाई है तो उन्होने यह कहकर शास्त्राथ करने से इन्कार कर दिया कि गृहपति के यहा भोजन करने से मैं अब भ्रष्ट हो गया हू।

हम इस बात से घोर घृणा करते है कि केवल जातीय अपमान के कारण कोई किसीको ऊचा नीचा समझे। ऊचाई नीचाई *विद्या और योग्यता की है। विद्वान और सदाचारी जन ही सदा*

उच्च समझे जाने चाहिए, चाहे वे भगी ही क्यो न हो। ऐसे पुरुषो की सदा पूजा हुई है और होगी। किसीकी सामर्थ्य नही, जो इस सम्मान से उन्हे रोक सके। वह समय दूर नही है, जब कोई ब्राह्मण, केवल जनेऊ गले मे डालकर और अपने को शर्मा बताकर ही आदर नही पा सकेगा। कोई आदमी घमण्ड से अपने को क्षत्रिय या वैश्य-कुल का धनी कहकर अकडे परन्तु गुण उसके निकृष्ट हो तो यह सभव नही कि वह क्षत्रिय या वैश्य कहला सके।

जाति के बडप्पन का माहात्म्य अब लद गया, अब गुणो का राज्य है। वीरता, साहस, हिम्मत और विद्या की हवा बह रही है। हमे चाहिए कि ऊच-नीच की पुरानी परीक्षा करना छोड दें। न तो हमे अपने को उच्च कहकर नीच जाति के भाइयो के सामने अकडना चाहिए और न हमे मूर्ख और पतित ब्राह्मणो के सामने सिर झुकाना चाहिए। "अविद्यो वा सविद्यो वा ब्राह्मणो मामकी तनूम।" यह एक प्रसिद्ध वाक्य है। इसका अर्थ यह है कि ब्राह्मण चाहे मूर्ख हो या विद्वान, वह परमेश्वर का अश है। हम यह नही मान सकते कि जो रसोईगिरी करके पेट पालते फिरते हैं, जो चमारो के अधीन रहकर गारा-चूना उठाते हैं, जो गुलामगिरी की नौकरी-चाकरी करते है, वे ब्राह्मण है। वे ब्राह्मण नही, देवता नही, पूज्य नही, परमेश्वर के अश भी नही। वे शूद्र हैं, सेवक हैं। ब्राह्मण वे हैं, जो धर्मात्मा, जितेन्द्रिय, सत्यवादी, त्यागी और धर्मशास्त्र के ज्ञाता हैं। उन्हे पूज्य समझना प्रत्येक पुरुष का कर्त्तव्य है चाहे वे किसी जाति मे उत्पन्न हुए हो। महर्षि वाल्मीकि भील होकर बडे-बडे महर्षियो द्वारा पूज्य माने गए। कवि कालिदास गडरिया होने पर भी पूज्य

विद्वान माने गए, रैदास, तुकाराम आदि सन्त चमार, डोम आदि होने पर भी सिद्ध कहलाए। व्यास धीवरी के पुत्र, वसिष्ठ वेश्या-पुत्र और पराशर भंगिन के पुत्र थे। इन सभीको पूज्य ऋषि-पद मिला है। जगत् मे गुणो की पूजा है। आजकल अनेक नीच जाति के पुरुष उच्च शिक्षा पाकर हाकिम बन जाते हैं, उनके सामने बडे बडे ब्राह्मण लम्बा सलाम करते है। ऐसी परिस्थिति मे वश का झूठा घमण्ड रखना हास्यास्पद नही तो और क्या है ?

भाग्य

क्या यह सच है कि भाग्य मनुष्य को सब तरह के नाच नचाता है ? जीवन, मरण, सुख, दु ख, मृत्यु, धन, स्त्री, पुत्र, आरोग्य—सब भाग्य के अधीन हैं। विधाता ने भाग्य मे वे सब बातें अमिट अक्षरो मे लिख दी हैं जो इस जन्म मे होती हैं। वे नही टल सकती। जिसके भाग्य मे धन नही वह लाख परिश्रम करने पर भी निधन रहेगा। जिसके भाग्य मे विद्या नही, यश नही, सन्तान नही, उसे ये वस्तुए किसी तरह नही मिल सकतीं।

ज्योतिषी लोग यही कहते है। सामुद्रिक विद्या-विशेषज्ञ और मस्तिष्क की रेखाए जानने वाले भी यही कहते हैं। ज्योतिषी लोग जन्म कुण्डली बनाकर उसके आधार पर जन्म-भर की दशाए और धन, स्त्री, सन्तान, आयु आदि के विषय मे भविष्य की सब बातें लिख देते है। सामुद्रिक लोग हाथ की लकीरो को पढ-कर हजारो बातें बता देते हैं। इसी प्रकार कर्म रेखा अमिट है। प्रारब्ध प्रबल है—यह बात पृथ्वी-भर के मनुष्यो मे विख्यात है।

स्त्रिया और मूख लोग सोलहो आने इसी अटल भाग्य-बल के विश्वासी दीख पडते हैं। साथ ही लाखो बुद्धिमान, विचार-वान, विद्वान भी इन बातो पर विश्वास रखते है। कुछ चमत्कारी ज्योतिषी और शकुन-उचारने वाले ऐसा चमत्कार दिखाते हैं कि बुद्धि चकराती है।

मनुष्य का यह स्वभाव है कि जो बात समझ मे नही आती,

उससे भय या श्रद्धा करने लगता है और उसे दैवी बात समझता है। एक समय था, जब सारी पृथ्वी पर जादूगर लोग बडे शक्ति-सम्पन्न समझे जाते थे, पर ज्योही विद्या का प्रचार हुआ कि जादू केवल खेल-तमाशे की वस्तु रह गया। प्राय वही दशा ज्योतिषी और मन्त्र के जानने वालो की है। पहले उनकी बडी प्रतिष्ठा थी, परन्तु अब उनके प्रति उतना आदर नही है।

इस बात को छोडकर कि चमत्कार मन पर विश्वास पैदा करते हैं—इस बात पर विचार करना चाहिए कि भाग्य क्या वस्तु है और क्या मनुष्य के परिश्रम, दान, तप, पुण्य मे से कोई भी भाग्य मे दखल नही दे सकता? क्या उद्योग से मनुष्य अपने भाग्य को नही बदल सकता?

हम ऐसी मिसाल दे सकते है कि मनुष्य अपने भाग्य-बल से नही, केवल परिश्रम और उद्योग-बल से उन्नत हुए। उद्योग से उन्होने करोडो रुपयो की सम्पत्ति पैदा की, उद्योग से वे भिखारी से राजा हुए, उद्योग से उन्होने ससार मे अमर नाम पाया। तब क्या उद्योग ही सबसे बडी शक्ति है? यह बात भी मानने की तबीयत नही करती। क्योकि हम बडे बडे उद्योग-शील पुरुषो को निराश और दु खी देखते हैं, बडे-बडे धर्मात्माओ को शोक और चिता मे चूर देखते हैं। तब यह क्या गोरख धधा है? भाग्य और उद्योग, तकदीर और तदबीर मे प्रबल कौन है—इसका भेद खुलना चाहिए।

शास्त्रो मे लिखा है कि भोग तीन प्रकार के होते हैं (१) सचित, (२) क्रियमाण और, (३) प्रारब्ध। सचित भोग वे हैं, जो जन्म-जन्मान्तरो से सचित रहते है और जिनका समय पाकर उदय होता है। जैसे बीज हवा, पानी और काल पाकर उगते हैं,

केवल हवा-पानी से ही नही। उसी तरह सचित भोगो के उदय होने का जब समय आता है, तभी वे उदय होते है। अचानक हम देखते है कि हमे धरती मे गडा हुआ धन मिल गया, या किसीको सम्पत्ति मिल गई। इमी प्रकार अचानक हमपर कोई विपत्ति आ पडी। यह हमारा सचित भोग था।

क्रियमाण भोग वह है जो किया जा रहा हो। जैसे चाकू से उगली कटी और खून निकल आया। यह भोग कर्म या उद्योग के नाम से पुकारा जा सकता है। एक मनुष्य किसी भी कार्य मे उद्योग कर रहा है, फिर भी फल पाना उसके अधीन नही। उद्योग का फल भी चूकि दैवाधीन है, इसलिए वह भी क्रियमाण भोग है। फिर भी कुछ वस्तुए हैं, जो मनुष्य के लिए सर्वश्रेष्ठ हैं, वह है विचार, शक्ति, बुद्धि और ज्ञान। इनके आधार पर वह अपने भोग और भाग्य को नियत्रण मे रखता है।

वास्तव मे भाग्य और भोग मनुष्य के लिए पैतृक सपत्ति हैं। अर्थात् वह उसे जन्म के समय ही मिल जाती है, वह फिर चाहे कैसी ही भली-बुरी हो। परन्तु उस सपत्ति को चौपट करना या आगे वढाना उसके लिए सरल है। इस क्रिया को उद्योग कहते हैं।

जैसे लोहे की पटरी पर रेलगाडी चलती है, उसी तरह भाग्य की सडक पर उद्योग चलता है। पातकी पुरुप भी उद्योग से सूखी रोटी पाते हैं। फिर साधारण भाग्यशील क्यो न पाएगे? इसलिए जो भाग्य को प्रबल मानते हुए भी उद्योग करते और सफल होने पर गव न कर ईश्वर को धन्यवाद देते है तथा निष्फल होने पर शाति और सतोप रखते हैं, ऐसे पुरुप बुद्धिमान, विचारशील एव विवेकी कहलाते हैं।

प्रारब्ध-भोग उस प्रधान कर्म-समूह को कहते हैं, जिसके आधार पर यह शरीर प्रदान किया गया है। ससार मे अनेक अधम और उत्तम योनिया हैं। प्रत्येक योनि मे जीव का वास है। ऐसी भी योनिया हैं, जिनकी आयु हजार वर्ष की है, और ऐसी भी योनिया है, जिनकी आयु कुछ क्षणो की है। इतने ही समय मे बाल, युवा, वृद्धावस्था हो जाती है और दो-चार हजार बाल-बच्चे भी हो जाते है। प्लेग के कीटाणु और अनेक जाति के सूक्ष्म जतु इसी प्रकार की योनियो मे से है।

मनुष्य की योनि सर्वोत्तम है। मनुष्य पूर्ण स्वाधीन है, उसके शरीर मे सम्पूर्ण अग है। वह जगत् के प्राणियो का राजा है।

प्रारब्ध ने उसे यह मनुष्य शरीर दिया है, किंतु सचित और क्रियमाण भोग उसे कभी-कभी पशु-पक्षियो से अधिक दु खी, हीन और चिन्तातुर बना देते है। मनुष्य ससार के समस्त प्राणियो से अधिक रोगी रहता है। वह ससार के सब प्राणियो से अधिक असन्तुष्ट और व्याकुल रहता है। इसलिए अपनी स्थिति सब तरह से ठीक रखने के लिए उसे उद्योगशील होना चाहिए।

क्रांति

क्राति एक स्थिर सत्य है। पर यह बात सवथा असभव है कि सत्य सब अवस्थाओ मे मधुर और दशनीय हो। भावनाओ का मूल्य वास्तव मे विपत्ति से आका जाता है और कोई भी सद्-भावना उसी परिमाण मे ऊची उतरती है, जिस परिमाण मे विपत्तियो मे वह स्थायी रहती है। सद्भावनाए भी कभी-कभी देखने मे कुत्सित और भीपण हो जाती ह। खोटे सोने से खोटापन निकालने को जब उसे तेजाब मे पकाते है, तब उसका बीभत्स, मैला और भीपण रूप बनता है। वैसे ही जब सत्य कलुपित स्वार्थों से पद दलित होता है, तो विशुद्ध होने के लिए उसको भीपण बनना पडता है। क्राति भी सत्य का एक भीपण रूप है। वह चाहे कैसी भयानक क्यो न हो, सदा सत्य की पवित्रता और शाति की पुनरचना के लिए ही होती है।

क्राति एक बडा डरावना शब्द है। शातिप्रिय लोग, चाहे वे कितने ही सपन्न और सशक्त क्यो न हो, क्राति के नाम से डरते हैं। कोई राजसत्ता चाहे कैसी उदार क्यो न हो, उसने क्राति को तत्क्षण बल-पूवक दवा देने लिए कडे से कडे कानून पहले से ही बना रखे है। मतलब यह कि राजा और प्रजा दोनो ही क्राति के नाम से कापते हैं और क्राति के बीज को तत्काल नप्ट कर देने मे सबसे अधिक व्यग्रता तथा तत्परता दिखाते हैं। इतना सब है, फिर भी ससार के सभी सभ्य राज्यो मे अच्छे से अच्छे जमाने मे, भारी से भारी शक्ति के सामने समय-

समय पर क्राति बराबर हुई, ओर यद्यपि तत्कालीन सत्ताधारियो ने क्राति के नेताओ को फासी देने, सूली पर चढाने, गर्दन काटने-जिंदा जलाने, विष पिलाने और कारावास के निदय और चरम-सीमा के दण्ड दिए है, पर तु बाद मे इतिहास ने उन क्रातिकारियो को मुक्त कण्ठ से धर्मात्मा और निर्दोष माना है।

क्राति सत्य की सच्ची और निर्भीक आवाज है, क्राति न्याय का खरा रूप है, क्राति न्याय का निर्दोष माग है और क्राति ही सामाजिक जीवन का निरोगीकरण है। वैद्यक परिभाषा मे क्राति को जुलाब कह सकते है और काव्य की परिभाषा मे उसे आधी कह सकते है। जिस तरह इन्द्रियो के दास, जिह्वा-लोलुप जन नाना प्रकार के मिर्च-मसाले आदि अप्राकृतिक पदार्थ खाकर और तरह तरह के मिथ्या आहार-विहार करके अनेक जाति के रोगमूलक कीटाणुओ को शरीर मे बसाकर रोगी हो जाते है और जुलाब देकर जिस प्रकार उनके शरीर से समस्त दूषित पदार्थ निकाले जाकर शरीर शुद्ध और निमल किया जाता है, ठीक उसी प्रकार मनुष्य समाज, ईर्ष्या, द्वेष, अज्ञान और स्वार्थ-वश जब अनेक बुराइयो मे परिपूर्ण हो जाता है तब क्राति का जुलाब देकर उसे विशुद्ध और सबल बनाकर फिर नये सिरे से खडा किया जाता है और जैसे भीषण गर्मी से उन्मत्त होकर वायु प्रचड होकर रेत को उडाती हुई आधी ले आती है और उसके पीछे चार बूदें पडने से प्रकृति सौम्य बनती है, वैसे ही क्राति की आधी एक भीषण गर्जन-तर्जन करके समाज के समस्त दोषो को उडा ले जाती है और समाज को सुशृखल बना देती है।

तीसरी परिभाषा मे यदि प्रकृति के नियमो को देखकर

विचार किया जाए तो ऐसा मालूम होगा, मानो क्राति प्रकृति के दोपो को निकालकर विशुद्धता और पवित्रता उत्पन्न कर देती है और फिर सद्भावनाओ की उत्पत्ति होती है। इस परिभाषा को दृष्टि मे रखकर एक वात यह भी कही जा सकती है कि इस प्रकार की क्राति मनुष्य समाज मे ही आती हो यही वात नही है, जड जगत् मे भी वैसा ही दिखाई देता है। क्राति की उपमा जो आधी या तूफान से दी जाती है वह वास्तव मे उपमा नही है, आधी और तूफान ही जड जगत् की क्राति है। इन सवका अथ यह है कि क्राति एक प्राकृत उद्वेग है, वह नैसर्गिक हुडक है, एक सत्य अग्नि है। उसमे पाप, स्वाथ, अत्याचार और मलिनता भस्म होकर शाति, तृप्ति, नया सगठन और जीवन प्राप्त होता है।

निस्सदेह क्राति ईश्वरीय विधान है—वह न स्वाथ है, न पाप। कोई क्रातिकारी वेतन के लोभ से, पद वृद्धि अथवा किसी अन्य स्वाथपूण आकाक्षा से प्रेरित होकर क्राति नही करता। भारी से भारी त्याग करके, भारी से भारी जोखिम अपने सिर पर लेकर वह क्राति करता है। ससार का कोई भी स्वार्थी, कपटी और पापिष्ठ व्यक्ति कभी इतना आत्म त्याग, परिश्रम और अध्यवसाय नही कर सकता, जितना क्राति का साधारण सिपाही स्वेच्छा और आनदपूवक कर लेता है। पवित्र धर्मात्मा के मुख पर मृत्यु के समय जो आनद और शाति दीखती है, वही शाति और आनद सभी क्रातिकारियो के मुख पर मृत्यु काल मे दीखती है। बल्कि हम तो यहा तक कह सकते हैं कि क्रातिकारी और परम वीतराग योगी के सिवाय कोई वैसे शातिपूवक मृत्यु और कष्टो का सामना कर ही नही सकता और न किसीमे इतना प्रभाव

और बल ही आ सकता है।

हम सुकरात, ईसा मसीह, कृष्ण, दयानद, भगतसिंह और ऐसे हजारो लाखो महापुरुषो को क्रातिकारी के नाम से याद करेंगे। इनकी क्राति मिथ्या विश्वासो के विरुद्ध थी, जिसके कारण समाज का आत्म-बल और विचार-धारा कुण्ठित और प्रभा-शून्य हो गयी थी, जनता और भीर और मूख बन रही थी। परतु कुछ ऐसे वीर भी है जो तलवार लेकर राजसत्ताओ के विरोध मे आवाज उठाकर मर मिटे। अमेरिका, यूरोप और एशिया के ऐसे असरय वीरो के नाम इतिहास के पृष्ठो मे चमक रहे है। हम उन्ही पवित्र नामो मे सन १८५७ की भारत क्राति के नायक धुधूपत, नाना साहव और पजाव तथा बगाल के फासी पाए हुए और कालेपानी की नारकीय यातनाओ को भोगे हुए कुछ नवयुवको को भी, और जिनकी रस्सी का खून अभी भी गीला है काकोरी के उन प्यारो को भी गिनेगे, जिन्होने आज तक अपने उन भाइयो से कृतज्ञता तथा सहानुभूति नही प्राप्त की, जिनके लिए उन्होने अपना सवस्व वीरतापूवक वलिदान किया था।

कानून और सामाजिक नियम मनुष्य के बनाये हुए हैं, पर सत्य ईश्वरीय नियम है। ऐसी दशा मे अधिकार और स्वाथ के मद मे अधे होकर सत्तावालो की रीतिया जव-जव सत्य नीति का उल्लघन करेगी, तव-तव अवश्य क्राति होगी। वेद मे क्रातियो का उल्लेख है और क्राति की प्रशसा है। इतना ही नही क्राति करने की आज्ञा भी दी गयी है, पुराणो मे क्राति की कथाए वहुतायत से हैं। राजाओ को राज्यच्युत करके प्रजातन्त्र की स्थापना की अनेक घटनाए देखने को मिलती हैं।

हम कृष्ण को ससार का सबसे वडा क्रातिकारी समझते हैं।

के विपरीत क्राति की। कस को मारा, राज-सत्ता का परिवतन किया, जरासन्ध से बराबर युद्ध किया और अन्त मे विराट महाभारत की धधकती आग मे समस्त स्वेच्छाचारी सत्ताओ का विध्वस किया और रहा सहा पाप प्रभास क्षेत्र मे भस्म किया। यह कृष्ण का ईश्वरत्व था, यह कृष्ण की उदार क्राति थी। इस कार्य मे कृष्ण ने सभी छल, सभी झूठ, सभी वचनाए अनन्त भविष्य के लिए न केवल क्षमा कर दी गयी, वरन् अनुमोदित की गई। ससार मे कदाचित् ही कोई ऐसा महापुरुष हुआ होगा जिसने बुराइयो का ऐसा खुला और निर्दोष एव लाछनारहित उपयोग किया हो।

प्रचलित धम और विश्वासो के विरुद्ध आवाज उठाना और खुल्लमखुल्ला उनका खण्डन करना भी क्राति ही है और इसी कारण हम ईसा मसीह, शकर, दयानन्द और सुकरात को भी क्रातिकारी समझते है। बात वास्तव मे यही है। न्याय और उदारता के आधार पर जो आवाज़ उठायी जाये, वह चाहे राज-सत्ता के विपरीत हो, चाहे धर्म-समाज के विपरीत, वह चाहे किसी एक व्यक्ति की तरफ से हो, चाहे समस्त जन-साधारण की तरफ से, वह क्राति है, पाप कदापि नही।

अब प्रश्न यह है कि ऐसी क्रातियो को राजनीति और राज-धर्म क्यो अपराध मानता है? शात जनता उसमे क्यो भयभीत होती है? सत्ताधारी इन महात्माओ को क्यो कष्ट देते हैं? ईसा मसीह को अपराधी के कटघरे मे खडा करके एक पुरुप ने गभीरतापूवक उसे अपराधी कहकर सूली पर चढवा दिया। महा-तत्त्वदर्शी सुकरात को सामने खडा करके एक विद्वान न्यायाधिकारी ने उसे विप पीकर मर जाने की आज्ञा दे दी। अहमदाबाद मे

महात्मा गाधी को सामने खडा करके एक विद्वान् अग्रेज जज ने बडे अदब-कायदे के साथ उन्हे छह वर्ष का दण्ड दे दिया। ईसा मसीह की मिट्टी की मूर्ति आज आधे ससार के राजमुकुटो के लिए वन्दनीय और पवित्र है। गाधी भी महापुरुष सिद्ध हुए है। अत्याचार ही क्राति के उत्पादक है। रीतिया प्रारभ मे नीति के रूप मे निर्मित होती है और वे यथासभव निर्दोष निर्मित की जाती हैं, क्योकि उनपर विचार-विवेचन होता रहता है। किंतु आगे चलकर वे रीतिया रूढियो मे बदल जाती है और विचार-विवेचन न होने के कारण तथा सत्ताधारियो के हाथ मे रहने के कारण उन्हींके स्वार्थो का पोषण करती हैं। धीरे-धीरे उनमे अनेक अत्याचार, पाप, छल और स्वार्थ उत्पन्न हो जाते है और अन्त मे क्राति अनिवार्य हो जाती है।

राज्य-क्रातियो के अधिक होने के कुछ और भी गभीर कारण है। राज्य-क्रातिया कभी सिद्धातवाद के आधार पर नही होती, प्राय ऐन अवसर पर निर्मित होती है और उनका प्रयोग सदा इस ढग से किया जाता है कि वे सदा अधिकारी और सत्ताधारियो के ही सुभीते की वस्तु होती है। जनता जब तक अपने स्वार्थ या अधिकारो से वचित रहती है तब तक सब कुछ से उदासीन रहती है। इससे अधिकारी और भी अवसरवादी हो जाते है। परन्तु अन्त मे सत्य खुलता है, असतोष उत्पन्न होता है और जब जनता मे कोई सच्चा महात्मा उत्पन्न हो जाता है जो इस अन्याय को नही सह सकता, तो ईश्वर और धर्म के नाम पर सत्य का पक्ष लेकर वह लडता है। यही क्राति है।

उपर्युक्त कारणो से ही कानून क्राति से भय खाता है और उसकी निंदा करता है। परन्तु जनता भी क्राति से इतना भय

पाती है कि वह चुपचाप बडे से बडे अत्याचार को सहकर भी क्राति नही करना चाहती। हमारी समझ मे इसका कारण पुरुषार्थहीनता और इद्रियदासता ही है। जो तेजस्वी हैं, मानधनी हैं, वे अपने झोपडे मे, अपनी चटाई पर ही सुख से सो सकते हैं। उनके पास चाहे लाख चटाइया हो, यदि कोई वलपूर्वक उनकी चटाई को ले लेगा तो वे उसी चटाई के लिए लड मरेंगे, चाहे वह चटाई छीनने वाली कोई जगद्विजयिनी शक्ति ही क्यो न हो।

राज्य-क्राति हमेशा राजकीय कानूनो के दुष्परिणामो से होती है। अतएव कानून की बुराई क्राति की उज्ज्वलता और पवित्रता पर कदापि दोषारोपण नही कर सकती। जब तक क्रातिकारी पुरुष उदार, महान, वीतरागी, वीर, धीर, दृढ और सत्यवक्ता हैं, तब तक क्राति पवित्र, सत्य और अनुकरणीय धर्म है। यह दण्ड पर दण्ड है। जिस प्रकार दण्ड से सब भयभीत होकर नियन्त्रित रहता है उसी प्रकार क्राति से दण्ड भयभीत होकर नियत्रित रहता है। जिस देश मे सफल क्राति होती है, उस देश को परम सौभाग्यशाली समझना चाहिए, क्योकि वह उसके उत्थान की योग्यता का सबसे अधिक दृढ प्रमाण है।

यही एक बात ध्यान मे रखने योग्य है, कि सगठन वास्तव मे प्रेम और स्वीकृति का ही नाम है और यह कभी वलपूर्वक नही हो सकता। यदि छोटे लोग अपने को छोटा समझने से इकार कर दें, तो बडो का वडप्पन नही रह सकता, और यही क्राति है।

राजा को देखकर हजारो सैनिक अपनी बन्दूकें नीची कर

लेते हैं। हजारो सशस्त्र सिपाही सिर झुकाकर भेड की तरह अपने सेना-नायक की आज्ञा पालते हैं। असख्य प्रजा राजा को देखकर सिर झुका लेती है। तब क्या वह शक्ति का प्रावल्य है ? कदापि नही। राजा मे प्रजा मे अधिक बल नही है, सेनापति मे सेना से अधिक बल नही है, मालिक मे नौकर से अधिक बल नही है, उनका मान केवल उनकी स्वीकृति मे ही है। और वह स्वीकृति प्रेम, सहानुभूति और मनुष्यत्व के गभीर प्रदेश को वशीभूत करने से मिलती है परन्तु यदि वह प्रेम और सहानुभूति किसी कारण से कही कम या नष्ट जो जाए और इस कारण मे उस आदर सत्कार मे कमी आ जाए, तो जो राजा प्रजा मे, नायक सेना मे, मालिक नौकर से बल दिखाकर वह स्वीकृति लेना चाहे तो उससे अधिक मूख कोई नही हो सकता। साधारण हडताल के समय मालिक और मजदूरो मे जो भाव देखने को आता है, क्राति के समय वही भाव राजा और प्रजा, सेना और सेनापति मे दीख पडता है। हजारो वर्ष से जिस राजसत्ता को हम लरजते कलेजे से देखते थे, जिस राजा ने लाखो को फासी पर चढाया था, जो लाखो का भाग्य-विधाता था, उसीको प्रजा ने पागल कुत्ते की तरह गोली मार दी। इतने आपत्ति-ग्रसित होकर भी उन महा महिमान्वित सम्राट् ने ससार मे इतनी भी सहानुभूति नही पाई, जितनी कि किसी तुच्छ अपराधी को प्राणदण्ड के समय समाज से प्राप्त होती है। अधिकाधिक सत्ता का बल और उसका गव इतने ही से बहुत कुछ प्रकट हो जाता है। एक प्रधान बात और भी है कि क्राति का उद्देश्य उद्धार होना चाहिए, बदला नही।

जिनका यह विचार है कि उत्पीडक से बदला लेने से मनुष्य को सुख और सतोप मिलता है, वे भूल करते है। न्यायाधीश हत्यारे को प्राण-दण्ड देता है, यह तो सत्य है। परन्तु यह प्राण-दण्ड बदला नही है—दण्ड है।

कहते हैं कि खलीफा अली किसी अपराधी को जब क़त्ल करने लगे तो उसने उनके ऊपर थूक दिया और गालिया दी। इससे हजरत अली को गुस्सा आ गया, उन्होने फौरन तलवार म्यान मे रख ली और कहा, "इस वक्त मैं इसे कत्ल नही कर सकता, क्योकि मुझे गुस्सा आ गया है और मैं न्याय करने के योग्य नही हू।"

एक सस्कृत कवि का कथन है, "भविष्य मे अधिकाधिक उपकार करने वाला, कार्य-सिद्धि के उत्तमोत्तम फल देनेवाला स्वय कभी नष्ट न होकर शत्रुओ का नाश करने वाला, क्षमा के समान अन्य साधन ससार मे नही है।" सालोमन, जो प्राचीन काल में यूरोप का धर्मात्मा राजा था, कहता है, "दूसरो के अपराध को चित्त मे न लाना मनुष्य के लिए अत्यन्त गौरव की बात है।" बुद्धिमान लोग वर्तमान और भविष्य की बातो की चिंता करते हैं। लार्ड बेकन का कथन है, "जो मनुष्य अपने प्रतिपक्षी से बदला लेने के विचार मे सदा निमग्न रहता है, वह अपने घाव को—जो यो ही छोड देने से कुछ दिनो मे सूखकर आप ही आप अच्छा हो जाता—ताजा बनाए रखता है।" क्रांति जैसे पवित्र और कठिन कार्य मे बदले का विचार कभी आना ही नही चाहिए। इसका न्याय तो ईश्वर के लिए ही छोड देना चाहिए।

आत्मबोध

जिस समय भगवती सीता को ढूढने वानर चारो ओर रवाना हुए और दिगन्त मे भी ढूढकर उन्हे पा न सके तो सबको बडा क्षोभ हुआ। तब कुछ वानर समुद्र के किनारे एक पर्वत के शृंग पर समुद्र मे डूब मरने की इच्छा से जा बैठे। वहा उन्हे महाबली जटायु के भाई सम्पाति से सीता का पता लगा कि वह समुद्र के बीच के टापू लका मे रावण के अधीन कैदी है। समस्त वानर हताश हो अगाध उदधि को देखने लगे—कौन इस महासागर को पार करे? कहा इसके साधन है? कौन उस राक्षस-पुरी मे जाए? किसका ऐसा पराक्रम है—क्रमश सब ही बिलखने लगे। अत मे जाम्बवत ने हनुमान को लक्ष्य करके कहा, "हे वीर, तुम चुप साधे बैठे हो, तुम वायु के पुत्र हो, पवन के समान तुम्हारी गति है, पर्वत के समान तुम्हारी दृढता और वज्र के समान तुम्हारा शरीर है। बाल्यकाल मे तुम सूर्य को लाल गोला और सुन्दर खिलौना समझकर लाए थे और जगत् मे भयकरता उत्पन्न कर दी थी। अब तुम क्षुद्र समुद्र की निर्जीव तरगो को इस तरह देखकर सिर नीचा किए सोच रहे हो? तुम्हारा वीर्य कहा गया? उठो, एक छलाग मे तुम समुद्र लाघ सकते हो। एक ही चपेट मे राक्षसो का नाश कर सकते हो। एक ही हुकार मे लका-विध्वस कर सकते हो। उठो, स्वामी का कार्य करो—सती की रक्षा करो और हमारी लाज और प्राण बचाओ। तुमसे अधिक हममे कौन समर्थ है?"

जाम्बवत के यह वचन सुनकर हनुमान को रोमाच हुआ। उन्हे आत्मबोध हुआ—अपने-आपको पहचाना—रोम-रोम मे विजली की शक्ति दौडी। उन्होने एक जोर की किलकारी भरी और महासागर मे एक छलाग लगाई। आगे जो हुआ भारत का बच्चा-बच्चा जानता है।

लोग कहते हैं कि पीछे फिरकर देखना मूर्खों का काम है। होगा। जिनके पूवज बन्दर, असभ्य और मूर्ख हो वे उनपर परदा डालें, पर हमारे पूवज सतेज, आत्मयोगी, तपस्वी, यशस्वी और विजेता थे। वे ससार के गुरु, ससार के अन्नदाता, ससार-नियता और ससार के नेता थे। हमे पीछे फिरकर देखना ही नही, बल्कि इस घुडदौड को छोडकर पीछे वही लौट चलना चाहिए जहा व्यास, कपिल, कणाद, गौतम-से मुनि हो, जहा भीष्म, कर्ण, हनुमान जैसे महावीर हो, जहा राम-कृष्ण जैसे महापुरुष हो। वही हमारा अतीत हमें वर्तमान मे खीच लाना चाहिए। हमे आत्मबोध होगा—हम अपनेको पहचानेगे। हम न किसीका अनुसरण करेंगे, न किसीका सहयोग करेंगे—हम अपने रास्ते स्वय चलेंगे। यही आत्मबोध हमारा पथ-प्रदशन होगा— इसके पीछे हमे चलना चाहिए। हम जो है वही रहेगे। हमारा धम, हमारा घर, हमारे कम, हमारा व्यक्ति और समाज हमारा ही रहेगा। हम एक जाति हैं और वह जाति है, जिसके अस्तित्व समस्त विश्व की जातियो के बुजुर्गों ने स्वीकार किया था।

हमारा कत्तव्य-पथ बडा विकट है। वह एक भयकर तपश्चरण है, किन्तु हमे उससे भयभीत न होना चाहिए। हम सदा से अग्नि के पुजारी रहे हैं। सूय हमारे उपास्य देव हैं। तपश्चरण हमारे लिए नवीन पथ नही है। भारत भूमि का एक-

एक कण तपस्वियो के पसीनो से भीगा हुआ है। भारत ने तप के कारण महत्त्व पाया था। तप त्यागने से उसका पतन हुआ—अब फिर तप करके ही वह उठेगा।

वही हमारी आत्मा है, वही हमारा शरीर है, वही हमारे दिन रात हैं, वही गगा-यमुना, नद-नदी, पवत है, फिर हम भी वही क्यो न होगे ? आत्मबोध को भूलकर हम भटक रहे थे। हमे आत्मबोध हुआ है—हम जी गए है—हमारा नवीन ध्येय उन्नत मस्तक किए हमारा पथ-प्रदशक बना खडा है, केवल हमारी तैयारी की देर है। सबसे बडी खराबी यह है कि हमारे स्नायु-मडल अत्यत निवल पड गए है। 'जान-माल' का खतरा सुनते ही हम भयभीत हो जाते है, मोह मे हमारी जान अटकी रहती है। यह हमारी निबलता है। कौन जाति हजारो वप तक दवाई जाकर, मारी जाकर, लूटी जाकर अपना ओज बनाए रख सकी है ? जिसकी वहू-बेटियो पर बलात्कार किए गए, जिसके राजछत्र उलट डाले गए, जिसके धर्म पर घोर बलात्कार किया गया, वह जाति जीवित है यही बहुत है परन्तु मनुष्य-समाज अब एक नये युग मे पहुच रहा है। भारत अब जाग रहा है। अब उसे आत्मत्याग करने की जरूरत है, कष्ट सहने और मरने की जरूरत है। सबसे प्रथम हमे अपने हृदयो से 'जान-माल' के खतरे का भय दूर कर देना चाहिए। उसके पीछे चापलूसी, खुशामद और सुख-लालसा को त्याग देना चाहिए। इसके बाद हमे अभ्यास और बलपूवक मन मे से कायरपन निकाल डालना चाहिए और धीरे-धीरे वीर बनने की हौंस मन मे जाग्रत् करनी चाहिए।

ये हमारी व्यक्तिगत तैयारिया हैं जिन्हे मैं बहुत बडी

दृष्टि से देखता हू । जब तक हमारा व्यक्तित्व न बनेगा, समाज का सच्चा सगठन कभी न होगा। प्राचीन बुजुर्गों के इतिहास पर दृष्टि डालिए। उनके जीवन की प्रत्येक घटना उनके व्यक्तित्व से भरी है। वे ही अमर हैं—वे ही यशस्वी हुए हैं, जो अपने व्यक्तित्व को बना सके थे। भीष्म पितामह, दुर्योधन, राम और कृष्ण, अर्जुन और भीष्म, प्रताप, दुर्गादास—इनका व्यक्तित्व पूजा के योग्य था। रामायण-काल से लेकर महाभारत-काल तक और उससे पीछे पृथ्वीराज से लेकर अतिम मुगलो के शासन-काल तक भारत का यश वीरता से ओत प्रोत रहा है। स्त्रियो ने स्त्रियो के रूप मे, बालको ने बालको के रूप मे, क्षत्रियो ने क्षत्रियो के रूप मे, वैश्यो ने वैश्यो के रूप मे और शूद्रो ने शूद्रो के रूप मे बराबर वीरता का परिचय दिया है। महाराणा प्रताप यदि शत्रुजयी हुए तो क्या अकेले ? राम यदि मर्यादा-पुरुषोत्तम बने तो क्या अकेले ? पाण्डव यदि विजयी हुए तो क्या अकेले ? नही, उनके सहयोगी जनो का वीरत्व उनके साथ था और प्रत्येक का व्यक्तित्व अपने स्वामी के ही समान था। आल्हा-ऊदल का नाई रूपा ऊदल के बराबर का योद्धा था। प्रत्येक लडाई मे पहली चोट वही करता और हजारो सशस्त्र जनो से घिरने पर भी अक्षत बचकर आता था।

जब तक हमारे जीवन वसे न बनेंगे, जब तक हमारी व्यक्तिगत तैयारिया पूरी न हो लेंगी, जब तक जान माल का खतरा सुनकर हमारे होश उडते रहेगे, तब तक हम हारेंगे, पिटेंगे, मरेंगे, कुचले जाएगे।

हमारे शरीर मे बल हो, मन मे धैर्य हो, मस्तक मे शाति हो, आत्मा मे तेज हो, हृदय मे गैरत हो तो हम निर्भय बनेंगे,

हम वीर बनेंगे। हमारी विजय होगी। हम न्याय पाएगे—हम जीएगे और ऐसा जीएगे कि लोग हमे देखेंगे।

उद्धत और घमण्डी यूरोप हमारा आदर्श नही है, पर हम अपने पडोसी एशिया को बिना देखे नही रह सकते। जापान मे इतने शीघ्र परिवर्तन, रूस पर जापानी साम्राज्य की विजय, चीन मे मचू-वशवालो का पतन और चीनी प्रजातत्र की स्थापना, ईरान मे सुधार का प्रयत्न तथा उसके माग मे रूस और ब्रिटेन की बढती हुई आकाक्षा के कारण रुकावटो के साथ ही ब्रिटिश और रूसी प्रभाव-क्षेत्रो की रचना से ईरान का अपनी स्वतत्रता से वचित होना और अत मे रूसी क्राति तथा यूरोप और एशिया मे रूसी प्रजातत्र की स्थापना की सभावना—ये हमारे लिए पढने योग्य पाठ हैं। हिमालय के दूसरी ओर एशिया-भर मे स्वतत्र राष्ट्र फैले हुए है। स्वेच्छाचारी जार और चीनी सम्राट् आज मिट्टी मे मिल गए।

यह अनिवाय है कि एशिया के राष्ट्र अपनी राज्य-लोलुपता बढाएगे, तब भारत का क्या होगा? भारत इग्लैंड की दुधारू गाय थी—यदि यह विचार एशिया के उठते हुए राष्ट्रो मे भी उत्पन्न हो गया तो उस दुधारू गाय के स्वामित्व के लिए वैसा ही झगडा खडा होगा जैसा प्राचीन काल मे वसिष्ठ और विश्वामित्र मे हुआ था। इसलिए यह आवश्यक है कि यह दुधारू गाय अपने दोनो सीग खूब पैने बनाकर तैयार रख ले। इस दुधारू गाय को कोई साधारण गाय की तरह हलाल न कर सकेगा। भारत को स्थल और जल दोनो मार्गो से अपनी रक्षा करने की व्यवस्था शीघ्र कर लेनी चाहिए।

केवल स्वराज्य की प्राप्ति करके भारत के परिश्रम और

कष्टो का अन्त नही हो गया। बल्कि स्वराज्य की प्राप्ति के बाद उसका दायित्व इतना अधिक बढ गया है कि जिसके लिए उसे अब हजार-लाख गुना अधिक आत्म त्याग और दृढता दिखानी होगी।

एशिया मे प्राधान्य, प्रशात महासागर पर आधिपत्य और आस्ट्रेलिया के स्वामित्व के लिए भी आग सुलग सकती है। फिर व्यापारिक झगडो का होना अनिवाय है।

इन बडे परिणामो का शात चित्त से सामना करने के लिए हमे सम्पुष्ट, बलिष्ठ, आत्मावलम्बी और सशस्त्र होने की तत्काल जरूरत है। यह बात पुष्टि के साथ कही जा सकती है कि एकमात्र भारत का ही जन-बल इतना है कि वह भली भाति एशिया की स्वतत्रता की रक्षा कर सकता है।

जो सभ्यता शाति और प्रेम-पूवक अपने पडोसी के साथ जीवन-भर रहना नही सिखा सकती उससे हम सहयोग न करेंगे। जो सभ्यता अधिकारो की सत्ताओ को उच्छृ खल छोडकर आश्रितो पर बलात्कार को स्थान देती है उस सभ्यता से हम सहयोग न करेंगे। जो सभ्यता मनुष्य को मनुष्य नही समझने देती, मनुष्यो मे बन्धुत्व नही स्थापन होने देती, मनुष्यो के प्रेम को नही खिलने देती, मानव-समाज को नैसर्गिक जीवन से दूर ले जाती है, जहा बदाबदी है, होड है, ईर्ष्या है, आलस्य है, डाह है, घृणा है, रक्त पात है, स्वाथ है, चोरी है, व्यभिचार है, हत्या है, उस सभ्यता से हम सहयोग न करेंगे—कभी न करेंगे।

जहा आत्मा की सत्ता नही स्वीकार की जाती, मनुष्य की तात्कालिक सत्ताए शक्ति समझी जाती है, जहा मनुष्यत्व का वध किया जाता है, वहा उस देश मे, उस जाति मे—जहा वह

सभ्यता वास करती है—कोई सज्जन न जाएगा। उसकी चमक, रूप, आकर्षण वेश्या के समान त्याज्य है।

जिस सभ्यता ने हमारा मनुष्यत्व नष्ट करके हमें विदेशी टुकडो पर निर्भर बनाया, जिस सभ्यता ने हमारे शांत जीवन को सन्तप्त किया, जिस सभ्यता ने सरे-बाजार हमें मूर्खो की औलाद बताया, जिस सभ्यता ने हमारे बच्चो के पवित्र कण्ठ को विदेशी भाषा के दुरूह उच्चारण से अस्तव्यस्त कर दिया, जिस सभ्यता ने पिता और पुत्र के जीवन को छिन्न-भिन्न कर दिया, जिस सभ्यता की कृपा से ब्राह्मण पिता के पुत्र साहब बन गये, साध्वी सतियो को जिसने लेडी बनाया, जो महिलाए वेद मे 'असूर्यंपश्या' के नाम से प्रख्यात थी—जिन्हे सूर्य नही देख सकते थे—उन महिलाओ को बाजार की धूल फकाई, जिसने पवित्र गगाजल के स्थान पर मद्य, शुद्ध दूध की जगह मद्यपेय, घृत की जगह मास और आराम की जगह काम धर दिया, जिसने हमारी शात-पवित्र कुटियो मे आग लगा दी, जिसने हमारी छोटी-सी सुखी कुटिया को उजाड दिया—वह सभ्यता हमारी क्रोधभाजन है, वह हमारी शत्रु है, वह डायन चाहे जैसी सुन्दरी, मायाविनी, लुभाविनी क्यो न हो, हम उसे मार डालेंगे, फासी दे देंगे, गला घोट देंगे, नोच डालेंगे, टुकडे टुकडे कर डालेंगे और उससे सहयोग न करेंगे।

मृत्यु-धर्म

हम कुचली हुई जाति के आदमी है, इसलिए मृत्यु धम हमारे लिए सबसे प्रथम जानने योग्य है।

जीने के लिए मनुष्यो ने अपनी-अपनी शिक्षा और योग्यता के वल पर अनेको प्रकार निकाल लिए है। शान के साथ रहना, खाना, सोना, रोना, हसना, पाप करना, पुण्य करना आदि सैंकडो धातों पर पुस्तको, उपदेशो, व्याख्यानो और पद्धतियो की कमी नही है, पर विचार कर देखा जाए तो मरने के तिए भी वही ज्ञान और वही तैयारी प्रत्येक जाति और व्यक्ति को दरकार है।

जो जाति शान से मरना नही जानती, जिसने मरने को धम मे नही गिना है, जिसके जीने-मरने के हौसले नही है, जो मरने मे सु दरता की चाहना नही करती, वह चाहे व्यक्ति हो, चाहे जाति, जीने का अधिकारी नही है।

पूर्व पुरषो ने मृत्यु-धम को जीवन धम पर प्राथमिकता दी थी। उ होने मृत्यु धम पर जीवन-धर्म को न्यौछावर किया था। उन्होने मृत्यु-धम के महत्त्व को पहचाना था, उ होने मरने के बडे ही उज्ज्वल, प्रिय और रोचक नियम निर्माण किए थे, और यही कारण है कि उस मृत्यु ने उ हे नष्ट नही किया—वे अमर हैं।

हम पुनज मवादी जाति के आदमी हैं। हमारा धार्मिक विश्वास है कि मरने पर भी आत्मा अमर रहती है, मरने पर भी

हमारे जीवन का अत नही हो जाता। मरना केवल शरीर को बदलना-मात्र है—पुराने शरीर को त्यागकर नया ग्रहण करना है। इसलिए हमे अपने जीवन के कार्यो को इतना सकुचित नही करना चाहिए—जिनकी सीमा हमारे शरीर के शात होने ही तक हो।

हमे सदा—प्रलय तक—इसी ससार मे रहना है, काम करना है। उसका नियन्ता एक सर्वोपरि सत्य है। ऐसी दशा मे हमारे किसी भी काय या उद्देश्य मे अस्थायीपन आना पूण अविचार की बात है।

जिस मुसाफिर को यह विश्वास है कि मुझे एक रात ठहरना है और सवेरे चल देना है वह सराय मे ठहरे या वृक्ष के नीचे रात काट दे, केवल दूध पीकर सो रहे या कुछ साधारण खा-पीकर रात व्यतीत करे, परन्तु जिसे स्थायी रूप से वही रहना है, वह भी यदि ऐसा करे तो वह मूख है। जब आत्मा को बारबार कमवश होकर जन्म धारण करना है, तो उसका जीवन धम यही है कि वह अपने व्यक्तिगत या सामाजिक कोई ऐसे काम न करे जो केवल मृत्यु के विचार से अस्थायी या शिथिल कर दिए हो। इसके साथ ही मृत्यु से डरने की कोई आवश्यकता नही है। जैसे बच्चा नये वस्त्रो को प्रसन्नतापूवक पहनता है उसी तरह मनस्वी मृत्यु को हुलसकर स्वीकार करता है और वह उसे नव-जीवन का चिह्न समझता है, मैं उन्हे महान नही मानता, जिन्होने जीवन को अनित्य कहकर ससार को क्षणभगुर मान लिया और जीवन की लडाई मे स्वय को अकमण्य बनाकर माग मे हो बैठा दिया।

आश्चय है, जिन्होने एक ओर मृत्यु-धर्म का अध्ययन किया

है—उपनिषद्, दर्शनशास्त्र मे आत्मा के अमरत्व का तत्त्व पढा है—उन्होने भ्रान्तिवश ही मनुष्यो को अकर्मण्य होने का उपदेश दिया होगा।

जिन्हें मरना नही आता वे जीना नही जानते। जिन्हे मरने मे चाव नही है, उनका जीवन निर्भय नही हो सकता। जिन्होने मरने के उत्तम अवसर नही चुन लिए है, वे जीवन मे कभी सुखी न होगे। जो मरने मे उदासीन है, वे कभी विजयी न होगे।

मृत्यु ध्रुव है। डरने वाला भी उससे नही बच सकता है। जिस तरह मैले लोग मलिनता के अभ्यस्त होने पर स्नान करती बार रोते हैं, उसी प्रकार कायर पुराने शरीर को छोडती बार रोता और त्रस्त होता है। प्लेग मे, इन्फ्लुएंजा मे, अकाल मे तडप-तडपकर लाखो नर-नारी मरते हैं, मरने से डरने वाले सबसे प्रथम मरते है, हम केवल उनपर लाचारी दिखाकर रो देते है।

भीष्म पितामह ने पाण्डवो को बडे चाव और प्यार से अपने मरने का मार्ग बताया था और वे बडे ही धैर्य और तेज के साथ मरे भी। दधीचि ऋषि ने जीवित शरीर पर नमक लगाकर गौ से मास तक चटा लिया। राजा शिवि ने कबूतर की रक्षा के लिए अपने जीवित शरीर का मास दिया। दिलीप ने गौ की रक्षा के लिए सिह के आगे अपने को डाल दिया। क्या किसीको मालूम है कि इन घटनाओ के कितने दिन बीत गये ? मैं समझता हू, कोई गिनकर नही बता सकता। लिखित इतिहास के काल से बहुत पहले हमारे पूर्वजो ने टाटदार मृत्यु को बडे चाव से हुलसकर वरण किया है, और वे बिना ही इतिहास की सहायता

के जीवित है। क्या कभी किसीने इस गम्भीरता पर विचार किया है ?

राजपूत मत्यु के व्यवसायी थे। क्षण-भर मे वे मृत्यु को तैयार हो जाते थे और मर जाते थे। जवान पुत्रो की माता उनके मरने पर कभी नही रोई। नवोढा स्त्रियो ने आसू गिराना अपसगुन समझा। उन्होने शृगार करके हुलसकर मत पति की चिता पर सहगमन किया। माताओ ने दुधमुहे बच्चो को हाथ मे तलवार देकर उन्हे लोहे की मार करने भेजा। स्त्रियो ने हारे हुए पति पर कुपित हो किले का दरवाजा बन्द कर लिया। विवाह की रात्रि को कितनी स्त्रियो ने अपने पति को उकसाकर मृत्यु-धर्म के पालन को भेजा।

कहा गये वे जीवन के दिन ? किधर खो गई वह मृत्यु की शान ? लोग पैदा हो गये है तो मरेंगे भी निश्चित ही लेकिन आज मरो के लिए करुण क्रन्दन—कुहराम—मचा रहता है। छाती फटती है, देखा नही जाता। एक वे दिन थे जब मरना उत्सव था—मरना हर्ष था—मरना जीवन था—मरना धर्म था—मरना एक कर्तव्य था।

जिस समय शाहजहा की आज्ञा से राठौर-केसरी अमरसिंह की लाश चील और कौओ को खिलाने के लिए किले के बुर्ज पर नगी डाल दी गई, उस समय आगरा के गुलाम राजपूतो का खून भी उबलने लगा। पर किसीको साहस न हुआ कि वह मरे के अपमान की रक्षा करने के लिए वीरता दिखाए—मरने से सब डरते थे।

मृत अमरसिंह की विधवा ने अपने परिचित और सम्बन्धी जनो को सहायता के लिए बुलाया। उनमे अमरसिंह के एक

चचा भी थे जो बादी के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण जाति मे अपमानित होकर रुष्ट होकर आगरा मे बादशाह की सेवा मे थे। उन्होने समाचार पाकर दूत से कहा, "हम कब से उनके चचा हुए ? वे शुद्ध राजपूत है और हम गुलाम दासीपुत्र हैं। विवाह-शादी के समय जब हम कोई न थे तब यह रिश्तेदारी कैसी ? रानी से कह दो कि बूंदी से अपने भाई या पिता को बुला भेजें।" दूत हताश होकर यह उत्तर असहाय अबला के पास ले आया। पति का यह उत्तर उनकी रानी ने सुन लिया। वह लहू का घूट पी बैठी। उसने बादी को बुलाकर कहा, "आज महाराज जब भोजन जीमने आए तो रसोई मे सब बतन लोहे के रखना इसपर यदि वे या मैं नाराज होऊ तो चुपचाप भाग जाना।"

यही व्यवस्था की गई। महाराज रसोई मे लोहे के बतन देखकर आग बबूला हो गये। बादी से लाल होकर बोले, "सोने-चादी के बतन क्या हुए, जो लोहे के बतन लाकर रखे हैं ?"

रानी ने आकर कहा, "क्या है ?" बर्तनो को देखकर उसने कुपित होकर बादी से कहा, "मूर्खा ! तुझे नही मालूम है कि महाराज लोहे से डरते है। यह किसी राजपूत का चौका नही है, यहा सोने-चादी को छोडकर लोहे से क्या मतलब ?" महाराज ने रानी की ओर भौहे तरेरकर कहा, "क्या कहा ? मैं लोहे से डरता हू ? स्त्री होकर तुम्हे मेरे सामने यह कहने का साहस कैसे हुआ ?"

साध्वी पतिव्रता क्षत्राणी ने अग्निमय नेत्रो से पति को घूर-कर कहा, "तुम यदि लोहे से न डरते होते, तो तुम्हारे भतीजे की लाश को कौए-चील नोचकर खाते और तुम पट्‌रस व्यजन करने चौके मे पधारते ? तुम अपने-आपको बादी-पुत्र कहने मे बिगडते

हो—मैं कहती हू कि तुम वादी-पुत्र हो, हजार बार वादी-पुत्र हो—राजपूत होते तो विधवा बहू की असहाय पुकार सुनकर भी तुम रसोई जीमने नही आते—धिक्कार है तुमपर।"

क्या हुआ ? मृत्यु धम का ज्ञान हुआ। महाराजा ने बिना ही भोजन किए कूच किया, किले पर कठिन लोहा बजाया और टुकडे होकर भूमि पर गिर गए, और उनकी रानी अमरसिंह की रानी से प्रथम ही सती हुई।

यह जीवन धम था या मृत्यु-धम, यहा इसका विवेचन करना कठिन है।

विज्ञ पाठको को प्रख्यात अमेरिकन जहाज टिटानिक की घटना स्मरण होगी, जो बडा सुदर और अनोखा जहाज था और जिसपर केवल शौक के लिए अमेरिका के प्रख्यात धनिको ने यात्रा की थी। जिसके विषय मे उसके कप्तान की राय थी कि वह डूब ही नही सकता है। पर सध्या समय जब सब सुख से भोजन की मेज पर बैठे थे, मधुर प्यानो बज रहा था, नाच-रग मे सब मस्त थे, जहाज एक चट्टान से टकराया और शीघ्र ही 'जहाज बच नही सकता' यह विज्ञप्ति यात्रियो को दे दी गई। यात्रियो ने मरने की तैयारी की। गम्भीर मुख मण्डलो पर स्वर्गीय ज्योति चमकी। बाइबिल खुल गयी। जहाज धीरे-धीरे धसकने लगा और प्रत्येक यात्री धर्म-ग्रथ का पाठ करते-करते मृत्यु के मुख मे धैय से चला। जब समस्त जहाज मे पानी भर रहा था, तब भी उसमे धर्मगीत गाया जा रहा था।

और एक घटना अखबारो मे पढी थी। कोई जहाज भारत आ रहा था। दुघटनावश डूबने लगा। वह रोना पीटना, हो-हल्ला, कोहराम और कातर-क्रदन मचा कि समुद्र भी थर्रा

गया। लोग झपट-झपटकर नावो पर टूटे और अधिकारियो को गोली चलानी पडी। इन दोनो एक समान घटनाओ मे मृत्यु-धम को निभाने का फक ही दीखता है, सच है। जो जाति मरना नही जानती वह जीना भी नही जानती।

मृत्यु हमारा धम है, मृत्यु हमारा जीवन-पथ है, मृत्यु हमारा निवास गृह है, मृत्यु हमारा भविष्य है, मृत्यु हमारा उद्धार है, हमारा तेज है।

प्रत्येक *योग्यता और अधिकार के मनुष्य मृत्यु के सम्मान* को वरण करते हैं। सिपाही फासी के दण्ड की व्यवस्था होने पर अपनेको गोली से मार देने की याचना करेगा। सिपाही का फासी पर मरना अपमान है। सती स्त्रिया पति से प्रथम या पति के साथ मृत्यु की कामना करती हैं, यशस्वी यश के साथ मृत्यु की कामना करते हैं।

मृत्यु धर्म निर्मलता का धम है, मृत्यु-धम अनासक्ति का धम है, मृत्यु-धर्म कतव्य का धम है, मृत्यु-धर्म पवित्रता का धम है और मृत्यु धर्म प्राणी का अनिवाय धर्म है।

हम भगवान से प्रार्थना करेंगे—हे प्रभु! हमे सौभाग्य की मृत्यु दे। हे स्वामी! हमे सम्मान की मृत्यु दे।

न्याय

भारत मे जब कानून का निर्माण हुआ, उसका आधार नैतिक उत्तरदायित्व था। बहुत-से गुरतर अपराधो के दण्ड-स्वरूप प्रायश्चित्त ही बताए गए है, जो वास्तव मे आत्म शोधन है। ऐसे अपराधी जो वास्तव मे प्रकृत अपराधी न होते थे, वे अपने अपराधो के लिए—चाहे वे भूल से किए गए हो, चाहे परिस्थिति से विवश होकर—स्वेच्छा से प्रायश्चित्त करते थे और वे प्रायश्चित्त दण्ड-विधानो की अपेक्षा बहुत ही महत्त्वपूण हुआ करते थे। इसका कारण यह था कि भारतीय सस्कृति अपराध को पाप-श्रेणी के समान मानती थी। अति प्राचीन काल मे जव राजा और राज्य का निर्माण नही हुआ था, तब प्रजापतियो के हाथ मे दण्ड और शासन-व्यवस्था थी और वे अस्त्र-वल और प्रबन्ध-बल पर नही, नैतिक उत्तरदायित्व पर ही दण्ड-विधान करते थे क्योकि वे स्वय ऋषिगण थे, शस्त्र-सेना पास न रखते थे। परतु इस प्रकार के जीवन मे रहकर मनुष्य समाज दण्ड-विधान पर कितनी आस्तिक बुद्धि रखता था, यह बात भी अत्यत विचारणीय है। एक घटना के उल्लेख से उस जीवन का पता चल जाएगा, जो महाभारत मे मिलती है

शख और लिखित दो भाई थे। दोनो ऋषि थे। शख बडे थे। दोनो श्रीमत थे और दोनो के सुदर आश्रम थे, जिनमे नाना प्रकार के फल, फूल और वनस्पतिया उगी थी। एक बार लिखित अपने वडे भाई शख के आश्रम मे उनसे मिलने गये। शख कही

बाहर गए हुए थे। लिखित आश्रम मे घूमने और आनद लेने लगे। एक वृक्ष पर एक पका फल देखकर उन्होने उसे तोड लिया और खाने लगे। इतने ही मे शख आ गए। शख ने उन्हे फल खाते देखकर कहा, "तुमने यह फल कहा से लिया ?"

लिखित ने हसते-हसते कहा, "इसी वृक्ष से।"

"यह वृक्ष तो मेरा है, मेरी बिना आज्ञा के तुमने यह फल क्यो लिया ? तुमने यह चोरी की, तुम चोर हो।"

लिखित ने सशक होकर पूछा, "क्या मैंने चोरी की ?"

"निस्सदेह।"

"तब मैं चोर हुआ ?"

"तुम चोर ही हुए।"

"तब आप मुझे दण्ड दीजिए।"

"दण्ड राजा देगा। तुम तत्काल राजा के पास जाकर दण्ड की याचना करो।"

लिखित तत्काल राजा के पास चले। धर्मात्मा सुधन्वा उस समय राज्य कर रहा था। उसके द्वार पर पहुचकर लिखित ने राजा को अपने आने की सूचना दी। राजा लिखित ऋषि का आगमन सुन सिंहासन त्याग, मन्त्रिवर्ग सहित उनका स्वागत करने द्वार तक आए और अर्घ्य-पाद्य-आचमनीय, मधुपर्क तथा आसन से सत्कार करके हाथ जोडकर पूछा, "हे ऋषिराज, इस दास को आपने दर्शनो से कृतार्थ किया, अब कुछ आज्ञा प्रदान कीजिए।" ऋषि ने कहा, "राजन्, हमने चोरी की है, हमे न्याय से दण्ड दीजिए।"

राजा ने पूछा, "आपने क्या चोरी की है ?"

लिखित ने सारा हाल कह सुनाया।

राजा ने कहा, "ब्रह्मन्, राजा को जैसे दण्ड देने का अधिकार है, उसी प्रकार अभियोग सुनकर क्षमा करने का भी अधिकार है। मैंने आपका अभियोग सुन लिया, आपको मैं क्षमा करता हू।"

लिखित ने कहा, "राजन्, आपको क्षमा का अधिकार नही। यदि आप मर्यादा और नीति-न्याय के विपरीत काय करेंगे तो धर्म-नाश होगा तथा प्रजा-पालन मे वाधा आयेगी। भाई ने धम से मुझे चोर कहा है, उनका कथन त्रिकाल मे भी असत्य नही हो सकता है। अत आप क्षमा नही, दण्ड दीजिए।"

राजा ने विवश होकर कानून के अनुसार लिखित के दोनो हाथ कटवा दिये।

दोनो हाथ कटवाकर खून से भरे हाथा को लिए लिखित भाई, के पास आए और दोनो कटे हाथ उन्हे दिखाकर कहा, "हे भाई, राजा से मैंने दण्ड प्राप्त किया, अब आप भी मेरे अपराध को क्षमा करें।"

यह घटना एक अत्यत उच्च कोटि के नैतिक जीवन पर प्रकाश डालती है। जिस काल मे मनुष्यो की ऐसी मनोहर मनोभावनाए थी, उस काल मे आत्म-दण्ड या प्रायश्चित्त का विधान यदि दण्ड से कही अधिक बाजी ले गया हो तो आश्चय नही। हम आज भी यह देखते है कि परिस्थिति-वश लोग खून करके पुलिस के सुपुर्द हो जाते है और बचाव की जरा भी चेष्टा किए विना फासी प्राप्त करते है।

इसका अभिप्राय यही है कि प्रकृत अपराधी को छोडकर, अन्य अपराधी न्याय, नीति और कानून को ठगना नही चाहते। परतु हजारो वर्षो के सघर्ष से मनुष्य समाज मे विविध तरह की प्रवृत्तिया पनप गई है और इसलिए कानून एक कडे अकुश के

रूप में आज समाज के सामने है, जिसके द्वारा अधिकारीगण अपनी इच्छा और आवश्यकता के अनुसार अपराधी पर शासन कर सके।

यह बात मानी जा सकती है कि कानून के निर्माताओ की यह कभी इच्छा न थी कि उसके द्वारा वाक्-छल या नीति-छल का प्रयोग हो। परतु अपराध जैसे भयानक विषय का नियत्रण करना और अपराधियो को कसके रखना साधारण बात नही।

यहा सही न्याय के दो पहलू विचारणीय हैं। (१) अपराधी के साथ वह व्यवहार किया जाय जिससे उसमे आत्म-सुधार की भावना जग। निरपेक्ष न्याय क्रूर होता है। वह कठोर समाज या शासन का प्रतिनिधित्व करता है जिसमे जैसे तैसे अपराधी को अपराध की सजा दे दी जाती है और सतोष कर लिया जाता है कि न्याय का पालन हो गया। रचनात्मक न्याय अपराध के मूल कारणो को जानकर अपराधी को सुधार के माग पर चलने को प्रेरित करता है।

(२) सबसे भला यही है कि समाज मे अच्छे चरित्रो का निर्माण हो। मनुष्य के अच्छे चरित्र, अच्छे गुण सक्रामक होते है। एक चरित्रवान् और गुणी आदमी अपनी प्रेरणाओ मे अनेक मनुष्यो के जीवन सुधार देता है। अच्छी जातिया, अच्छे समाज जो आज विश्व मे हैं, उनका निर्माण कोई एक ही दिन मे नहीं हो गया था। उन जातियो समाजो ने ऐसे मौलिक चरित्रा के पुरुष पैदा किए, जिन्होने अपनी विशेषताओ से करोडो मनुष्यो को प्रभावित किया। समाज मे जितनी स्वच्छता रहेगी न्याय भी उतना ही स्वच्छ होगा। सवत्र अपने को निर्माण करने की आवश्यकता है।

o o o
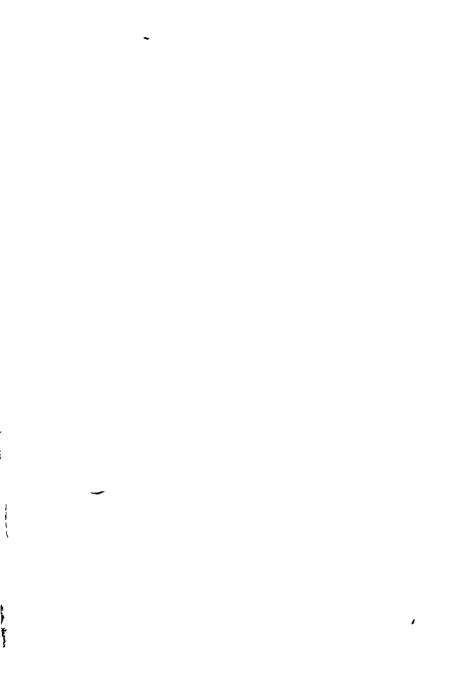
आचाय चतुरसेन

जन्म २६ अगस्त, १८९१ ई०।
निधन २ फरवरी, १९६० ई०।

आचाय चतुरसेन बहुमुखी प्रतिभा
धनी उस विराट् व्यक्तित्व का नाम है जि
आधी शताब्दी तक अनवरत रूप से न
विधाओ मे साहित्य सृजन का काय किया

लगभग साढे चार सौ कहानिया के अ
रिक्त उन्होंने ४० उपन्यास, १० नाटक
एकाकी तथा प्रभूत मात्रा म गद्य काव्य
समाज, राजनीति, धम, स्वास्थ्य और चिकि
आदि विषया के बृहदाकार ग्रथा की रचना
की। उनकी पुरस्कृत रचनाओं और
भाषाओ मे हुए अनुवादा की सूची लम्बी है

उनकी बहुप्रशसित एव क्लासिक स्तर
रचनाओ मे 'वैशाली की नगरवधू',
रक्षाम', 'सोना और खून', 'गोली', 'सोमन
'आरोग्य शास्त्र' आदि प्रमुख हैं। आत्म
के क्षेत्र मे—'यादो की परछाइया' का वि
स्थान है। अंग्रेजी राज्य मे सरकार द्वारा
की गयी उनकी आठ रचनाओ मे— सत्य
और असहयोग' तथा 'चाद' का फासी
बहुत प्रसिद्ध हैं।

चतुरसेन-साहित्य पर अनेक विश्ववि
लया के अन्तगत पद्रह शोधकर्ता शोध
कर रहे हैं तथा कई शोधग्रथ प्रकाशित
चुके हैं।